



बेहतर जीने की कला



प्रवर्तिनी चन्द्रप्रभाश्री

बेहतर जीने की कला

बेहतर जीवन का मार्ग दर्शाते ग्यारह पावन प्रवचन

स्व. प्रवर्तिनी श्री विचक्षणश्री जी म. की सुशिष्या
विचक्षण-ज्योति, प्रज्ञा-भारती
प्रवर्तिनी श्री चन्द्रप्रभा श्री जी म.

श्री सांवलिया पार्श्वनाथाय नमः
श्री जिनदत्तकुशल गुरुभ्यो नमः

शुभाशीर्वाद
प.पू. वर्तमान आचार्य प्रवर
श्री जिन कैलाशसागर सूरीश्वर जी म.सा.

संपादन
मुनिवर श्री शांतिप्रिय सागर जी

प्रेरणा
समयज्ञा विदुषी साध्वीवर्या प.पू. चन्दनबाला श्री जी म.

संकलन
डॉ. सुश्री सरोज जी कोचर

द्रव्य सहायक एवं प्रकाशक
श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती मन्दिर
139-कॉटन स्ट्रीट,
कोलकाता - 700007
दूरभाष : (033) 22695949

अन्य प्राप्ति स्थान :
श्री नागेश्वर कुशलगुरु दादावाड़ी ट्रस्ट
पो. उन्हैल, जि. झालावाड़
स्टेशन - चौम्हला (राज.)

मूल्य : सदुपयोग
आवृत्ति : प्रथम 5000

प्राक्कथन

अध्यात्म यात्रा का पथ अत्यन्त दुरुह है। भोग विलास के दलदल में फँसा सामान्य व्यक्ति इस मार्ग का पथिक नहीं बन सकता है। परिणाम स्वरूप एक ओर वह संसार की धारा में विभिन्न योनियों में विचरण करता हुआ मुक्ति मंजिल की ओर अग्रसर होने में असमर्थ रहता है। दूसरी ओर भौतिक चकाचौंध के दुष्चक्र में फँसने के कारण तनाव युक्त होता जा रहा है। ऐसी विषम परिस्थिति में पथ प्रदर्शक की आवश्यकता है जो मंजिल तक पहुँचने के मार्ग से परिचित करवा दे। श्रेष्ठ व्यवहार, मानसिक शांति, अध्यात्म की दशा का मालिक बना दे। सम्यक् पथ-प्रदर्शन के लिए गुरु ही वह अखण्ड ज्योति है जो अन्तर के अणु-अणु को परम प्रकाश से स्नान करा सकते हैं।

गुरुओं की इसी महान परम्परा के गगन मण्डल में देदीप्यमान सितारा प.पू. विचक्षण ज्योति, प्रज्ञा भारती, महामांगलिक प्रदात्री, आस्था की आयाम प्रवर्तिनी महोदया श्री चन्द्रप्रभा श्रीजी म.सा. ने अपने 55 वर्ष के संयम जीवन-पर्याय में एक लाख से भी अधिक कि.मी. के विभिन्न क्षेत्रों में विचरण करते हुए लाखों लोगों को अपने ओजस्वी और आध्यात्मिक वचनमृत से सिंचित किया है। आप अध्यात्म की गहराई, अनुभव की ऊँचाई, जीवन की सच्चाई के अपूर्व चिन्तन से युक्त हैं। आप आध्यात्मिक प्रवचन के माध्यम से संगठन, शिक्षा, सेवा, स्वावलम्बन, संस्कार आदि के क्षेत्र में समय-समय पर समाज को नूतन निर्देश-सन्देश से नवीन दिशा दे रहे हैं।

उनके प्रवचन आम इंसान को जीवन का सद्मार्ग प्रदान कर रहे हैं। वहीं उनका निर्मल चरित्र हमें अपने चरित्र निर्माण की प्रेरणा दे रहा है। प.पू. प्रवर्तिनी महोदया के आत्मकल्याणकारी आध्यात्मिक प्रवचनों से लाभान्वित होने का सुअवसर हम सभी को सदा प्राप्त होता रहे इसी पवित्र भावना से कोलकाता के पंचायती मन्दिर ट्रस्ट ने प.पू. मालवमणि गुरुवर्या श्री जी के प्रवर्तिनी पद अलंकरण समारोह के पावन प्रसंग पर युगीन समस्याओं के समाधान हेतु सारगर्भित प्रवचनों से सम्बद्ध पुस्तक को सर्वजनहिताय की मंगल कामना से प्रकाशित करने का संकल्प लिया। प्रस्तुत पुस्तक 'बेहतर जीने की कला' उसी संकल्प और सोच का परिणाम है। एतदर्थ ट्रस्ट साधुवाद का पात्र है। प्रसन्नता है कि एक वर्ष पश्चात् उनकी भावना साकार रूप लेने जा रही है।

प्रस्तुत पुस्तक में धर्म, सदाचार, सद्व्यवहार, नीति, सन्तोष, करुणा, मैत्री, एक्यभावना, दृष्टि साम्य, सेवा आदि से सम्बन्धित विषयों का संकलन है। जिन्हें सरल, सुगम शब्दों में विश्लेषण-विवेचन करने का विनम्र प्रयास है। आशा है, अध्येता आध्यात्मिक प्रवचनों को हृदयंगम कर समाधान एवं शान्ति को प्राप्त कर आत्मवेदी पर प्रतिष्ठित हो सकेंगे।

अन्त में एक तथ्य जिसे अभिव्यक्त करना आवश्यक है कि प.पू. प्रवचन प्रभावक श्री ललितप्रभ सागर जी म.सा. के प्रति हम अन्तःस्थ से प्रणत होकर वन्दन करते हैं कि आपने सम्पादन कार्य को नवीन दिशा प्रदान की।

प्रवचनों को संकलित करने की संपूर्ण प्रेरणा प.पू. चिन्तनशीला साध्वीरत्ना श्री चन्दनबाला श्री जी म.सा. द्वारा मुझे समय-समय मिलती रही।

प्रस्तुत पुस्तक आपको गुरुवर्या श्री के संदेशों को आत्मसात् करने में मित्रवत् सहयोग प्रदान करेगी। आप इसे अपने यात्रा-प्रवास में भी साथ लेकर जाएँ। इस प्रवचन पुस्तक से बेहतर जीवन का मार्ग दर्शन पाते रहें।

—डॉ. सरोज कोचर

विचक्षण ज्योति, प्रज्ञा भारती, महामांगलिक प्रदात्री
परम पूज्य गुरुवर्याश्री प्रवर्तिनी श्री चन्द्रप्रभा श्री जी म. की

जीवन झलक

- जन्म - वि.सं. 1995 माघवदी तेरस, बीकानेर (राजस्थान)
- पिता का नाम - श्री बालचन्द जी नाहटा
- माता - श्रीमती धापूबाई (दीक्षा नाम श्री वर्द्धमान श्री जी म.सा.)
- भ्राता - श्री मनोहरलाल नाहटा
- दीक्षा पूर्व नाम - कुमारी मोहिनी
- दीक्षा - वि.सं. 2009 फाल्गुन शुक्ला द्वादशी, खुजनेर (म.प्र.)
(14 वर्ष की उम्र)
- दीक्षा दाता - प.पू. वीरपुत्र श्री जिन आनंदसागर सूरीश्वरजी म.सा.
- दीक्षा गुरु - प.पू. जैन कोकिला प्रवर्तिनी महोदया श्री विचक्षण श्री जी म.सा.
- दीक्षा नाम - प.पू. श्री चन्द्रप्रभा श्री जी म.सा.
- अध्ययन - हिन्दी, संस्कृत, गुजराती आदि भाषाओं का, जैन आगम साहित्य
-इतिहास, कर्मवाद आदि का एवं जैन-जैनेतर ग्रंथों का
तलस्पर्शी अध्ययन।
- विचरण क्षेत्र - राजस्थान, मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, कच्छ, छत्तीसगढ़,
आंध्रप्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडू, झारखंड, उड़ीसा, बंगाल,
बिहार आदि अनेक राज्य।
- कार्यक्षेत्र - स्वप्रेरित जिनमंदिर व दादावाड़ी प्रतिष्ठित
वि.सं. 2037 वैशाख शुक्ला 10 नागेश्वर तीर्थ पर श्री जिनकुशल
दादावाड़ी प्रतिष्ठा समारोह
- (विशेष - भारत भर में काउस्सग मुद्रा में प्रथम प्रतिमा, खरतरगच्छ के समस्त पू.
गुरु भगवंतों का सान्निध्य)
- वि.सं. 2063 - कोलकाता महावीर स्वामी मन्दिर के अन्तर्गत दादागुरुदेव की
प्रतिष्ठा एवं दादावाड़ी परिसर में उपाश्रय का नवनिर्माण।
- वि.सं. 2064 - चिंतामणी विंग मन्दिर (शिखरजी तीर्थ) का संपूर्ण जीर्णोद्धार व
प्रतिष्ठा।
- वि.सं. 2043 - पीपाड़ सिटी में जीर्णोद्धार सह दादावाड़ी की पुनः प्रतिष्ठा।
- वि.सं. 2045 - सूरत शहर (मगदला) तीर्थ में दादागुरु प्रतिमा प्रतिष्ठा।

- वि.सं. 2045 - माघ शुक्ला त्रयोदशी सूरत शहर में दादावाड़ी परिसर में नूतन जिनमंदिर प्रतिष्ठा ।
सहस्रफणा पार्श्वनाथ जिनमंदिर में अनेक जिनबिम्ब प्रतिष्ठा ।
- वि. सं. 2049 - सिकन्द्राबाद-एरोड्राम रोड पर नूतन जिनमंदिर व दादावाड़ी की प्रतिष्ठा ।
- वि. सं. 2050 - मैसूर शहर में नूतन जिनमंदिर व दादावाड़ी की प्रतिष्ठा ।
- वि. सं. 2056 - सुजालपुर में नूतन दादावाड़ी की प्रतिष्ठा ।
- वि. सं. 2057 - इन्दौर के गुमास्तानगर में नूतन दादावाड़ी की प्रतिष्ठा ।
- वि. सं. 2057 - बड़वाह नगर में नूतन दादावाड़ी की प्रतिष्ठा ।
- वि. सं. 2057 - कोटा शहर में विशाल दादावाड़ी का आमूलचूल जीर्णोद्धार व पुनः प्रतिष्ठा ।

जिनमंदिर दादावाड़ी की प्रेरणास्रोत

1. बैंगलोर (बसवनगुडी) जिनमंदिर-दादावाड़ी-धर्मशाला, 2. इचलकरणजी - जिनमंदिर दादावाड़ी, 3. कोटूर-दादावाड़ी, 4. गांधीधाम-जिनमंदिर व दादावाड़ी, 5. नलखेडा-जिनमंदिर व दादावाड़ी (निर्माणाधीन), 6. खुजनेर-जिनमंदिर जीर्णोद्धार प्रारम्भ, 7. हैदराबाद कारवान दादावाड़ी परिसर में नूतन जिन मंदिर का नव निर्माण । जन कल्याणार्थ - शिक्षा - चिकित्सा आदि विविध कार्यों के साथ तप-जप स्वाध्य हेतु आराधना भवन - उपाश्रयादि की प्रेरणा

1. विचक्षण सेवा संघ (चैन्नई) 2. जैन सेवा समिति (बाड़मेर)
3. विचक्षण विद्यापीठ (रतलाम) 4. सुखसागर जैन गुरुकुल (रतलाम)
5. विचक्षण ज्योति गौशाला एवं विचक्षण डायगोनिस्टिक सेन्टर (भानपुरा)
6. विचक्षण भवन, वर्द्धमान आराधना भवन (उज्जैन)
7. विचक्षण आराधना भवन (रिंगनोद) 8. महावीर भवन (बीकानेर)
9. कुशल भवन (बीकानेर) 10. पारस-कुशल स्वाध्याय भवन (कोटा)
11. विचक्षण आराधना भवन (मंदसौर)
12. विचक्षण आराधना भवन (कोलकाता)

अनेक पदवियों से अलंकृत

जिनवाणी-प्रभाविका-केकड़ी, विचक्षण ज्योति-नागेश्वर तीर्थ, मालव-मणि-रतलाम, मरुधर अध्यात्म दीपिका-बीकानेर, प्रज्ञा भारती-चैन्नई, महामांगलिक प्रदात्री-गांधीधाम, शासन चन्द्रिका-इन्दौर, प्रवर्तिनी पदारोहण-कोलकाता संघ ।

प्रस्तावना

प्रसन्नता व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है क्योंकि यह किसी विज्ञान की सुविधाओं में नहीं वरन् व्यक्ति की सोच में नीहित रहा करती है। अगर व्यक्ति यह फैसला कर ले कि वह हर हाल में प्रसन्न रहेगा फिर चाहे चित्त गिरे या पुट मेरी समझ से फिर दुनिया में ऐसी कोई ताकत नहीं है जो उसे नाखुश कर सके। खुशी भी हमारी उपज है और नाखुशी भी क्योंकि जिस बीज से फूल पैदा होते हैं उसी बीज से काँटे भी। काँटों को देखने की बजाय फूलों को निहारने की दृष्टि उपलब्ध हो जाए तो इंसान भी फूल जैसा फरिस्ता बन सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक 'बेहतर जीने की कला' इसी चिंतन का परिणाम है। आदरणीय प्रवर्तिनी श्री चन्द्रप्रभा श्री जी.म. ने अपनी अंतर्दृष्टि से कुछ मंत्र उद्घाटित किये हैं जिसे मनन करके मनुष्य मन के साथ जोड़ ले तो उसका जीवन महक सकता है। पूज्या साध्वीवर्या ने जो कुछ प्रकृति-जगत, धर्म-जगत, जीवन-जगत और अध्यात्म-जगत में देखा, समझा और अनुभूत किया, उन्हीं प्रेरणाओं को सूर्य की किरणों की तरह हमारे सामने बिखेरा है।

जीवन की सफलता के लिए व्यवहार और व्यवसाय दोनों ही ऐसे हो जिनसे किसी का अहित न हो क्योंकि यही जीवन विकास का मूलमंत्र है।

प्रस्तुत पुस्तक में : वाणी से व्यवहार तक, सोच से स्वभाव तक, सफलता से सकारात्मकता तक, धर्म से अध्यात्म तक और परिवार से लेकर देश तक हर क्षेत्र को शामिल किया गया है ताकि इंसान को गागर में सागर का लाभ प्राप्त हो सके।

जो भी व्यक्ति अपने जीवन का प्रबंधन बेहतर तरीके से करना चाहता है। अपने घर, परिवार और सम्बन्धों में मिश्री का मिठास घोलना चाहता है और आसमान के स्वर्ग को अपने आस-पास घटित होता हुआ देखना चाहता है उनके लिए यह पुस्तक सूर्य की रोशनी व चंद्रमा की शीतलता की तरह आनंदित करने वाली साबित होंगी।

- मुनि शांतिप्रिय सागर

अनुक्रमणिका

- | | | |
|-----|--|-----------|
| 1. | कैसे बदलें दुःख को सुख में | 9 - 16 |
| 2. | मन को बनाएँ अपना मीत | 17 - 27 |
| 3. | शिक्षा को जोड़ें संस्कारों से | 28 - 40 |
| 4. | व्यसन + फैशन = टेंशन | 41 - 51 |
| 5. | कैसे सुधारें विचार और वाणी | 52 - 63 |
| 6. | बेहतर व्यवहार है श्रेष्ठ उपहार | 64 - 73 |
| 7. | विनम्रता की चाबी थामिए,
अहंकार का हथौड़ा नहीं | 74 - 82 |
| 8. | ऐसे सुधारें अंतर्दृष्टि | 83 - 91 |
| 9. | उबरें चिंता के मकड़जाल से | 92 - 101 |
| 10. | सेवा से करें समय को सार्थक | 102 - 111 |
| 11. | जननी में छिपी जन्नत की राहें | 112 - 120 |

कैसे बदलें दुःख को सुख में

जिंदगी की जंग जीतने का अर्थ है आने वाली मुसीबतों का मुकाबला करने के लिए स्वयं को तैयार रखना।

खूबसूरत नज़र आने वाली यह दुनिया एक नाट्यशाला है। पुण्य और पाप इसके निर्देशक हैं। इनके निर्देशन में हम अनेक प्रकार के नाटक करते हैं, भूमिकाओं का निर्वाह करते हैं। अपनी झूठी चतुराई में हम नाटक खेलते रहते हैं और पापड़ बेलते रहते हैं। संसारी नाटक का पात्र बन जाता है वहीं सर्वज्ञ मौन मूक दर्शक बनकर साक्षी भाव में जीता है।

संसार में सर्वत्र पाप-पुण्य का खेल खेला जाता है। पाप-पुण्य के खेल में व्यक्ति सदा घिरा रहता है। आज हम वही फल पाते हैं जैसे हमने बीज बोये थे। पाप और पुण्य रूपी बीजों के फलों को पाने से हमें कोई नहीं रोक सकता है। फ़र्क केवल इतना ही है कि पुण्य शुभ होता है और पाप अशुभ। जैसे रामलीला में कोई राम की भूमिका अदा करता है और कोई रावण की। लेकिन दोनों की भूमिका के पीछे पुण्य-पाप काम किया करते हैं। जीवन में हमें जो भी परिणाम प्राप्त होते हैं उसमें इन दोनों की ही भूमिका होती है। वैसे पुण्य और पाप दोनों ही बंधन हैं मगर एक शुभ बंधन है तो दूसरा अशुभ। पुण्य सोने की बेड़ी है तो

पाप लौहे की। सोने की बेड़ी मन को सुहाती तो है, पर भव-भ्रमण से मुक्त होने के लिए दोनों जेल की तरह है।

विदेश में एक जेल है। जिसकी प्रत्येक कोठी रेडियो, टेलीविजन, टेलीफोन, फ्रिज, ए.सी., डनलप आदि सुविधाओं से युक्त है। उसे एक विद्वान देखने गया। देखने के पश्चात् जेल अधिकारी ने विद्वान से पूछा, आप सलाह दीजिए हम इसमें और क्या सुधार करें। विद्वान ने हँसकर कहा — आपने इस जेल के कमरों को सभी सुविधाओं से युक्त बनाया है, पर स्वतंत्रता बिना सुविधाएँ किस काम की; शांति बिना सम्पत्ति किस काम की। सुविधाओं में बंधन तो है ही। कैदी को सजा पूर्ण करनी ही पड़ती है।

पाप का परिणाम सुविधा रहित सजा है और पुण्य का परिणाम सुविधायुक्त सजा है, पर जीवन का मजा दोनों सजाओं से मुक्त होने में हैं। इन्द्रियजन्य सुख का कारण पुण्य है और इन्द्रियजन्य दुःख का कारण पाप है। कुत्ता यदि पुण्यात्मा है तो करोड़पति के यहाँ अत्यन्त सुख-सुविधाओं को भोगेगा पर बंधन साथ रहेगा और कुत्ता यदि पापात्मा है तो गलियों में दर-दर की ढोकरें खाता फिरेगा। इस पुण्य-पाप के तमाशे को संसार का खेल कहा गया है। इतिहास भी साक्षी है कि मनुष्य के जीवन में सुख-दुःख, पुण्य-पाप पहिचान के आरे के भाँति घुमते-फिरते हैं।

मैंने कई लोगों के मुँह से भगवान से मौत माँगते हुए देखा है। जीवन में थोड़ा-सा दुःख, प्रतिकूलता या मन के विपरित हालत बनते ही व्यक्ति घबरा जाता है, निराश हो जाता है उसे लगता है ऐसी जिंदगी किस काम की? एक पति अपनी पत्नी से तंग आ गया। वह मंदिर में जाकर भगवान से प्रार्थना करने लगा, 'प्रभु, मुझे दुनिया से उठा ले।' तभी पास में खड़ी पत्नी ने कहा, 'प्रभु, मुझे भी तुरंत उठा ले।' पति ने कहा, 'प्रभु, तू इसकी सुन, मैं अपनी अर्जी वापस लेता हूँ।' ऐसा सोचना स्वयं से हारना है, जीवन से हारना है। संसार का सत्य यही है यहाँ हर चीज परिवर्तनशील है, पर व्यक्ति सुख को नित्य मान लेता है और दुःख आते ही हार जाता है। जिंदगी की जंग जीतने का अर्थ है — जो विपत्ति के समय आए कष्टों को समभाव से सहन कर लेता है, उस समय भी किसी को अपना शत्रु नहीं समझता उसी व्यक्ति की जीत होती है।

एक व्यक्ति हमेशा काले कपड़े पहना करता था। एक बार वे किसी सज्जन के घर गए। सज्जन ने उन्हें देखा और कहा — ‘आप काले रंग के कपड़े क्यों पहनते हैं?’ उन्होंने जवाब दिया — ‘मेरे काम, क्रोधादि मित्रों की मृत्यु हो गई है, उन्हीं के शोक में मैंने ये काले वस्त्र धारण किए हैं।’ सज्जन ने उन्हें घर से बाहर जाने को कहा। वे चले गए। सज्जन ने अपने नौकर को भेजा और उन्हें वापिस बुलाया। वे फिर आए। उनके आते ही सज्जन ने फिर चले जाने को कहा। वे फिर चले गए। इस प्रकार उन सज्जन ने उन्हें करीब 50 बार बुलाया और घर से निकाल दिया, किंतु फिर भी उनके मुख पर क्रोध या विषाद के भाव नहीं आए।

अंत में सज्जन ने उन्हें बुलाया और कहा — ‘सचमुच आप काले वस्त्र पहनने के योग्य हैं क्योंकि 50 बार अपमान के साथ घर से निकाले जाने पर भी आपके भाव स्थिर रहे।’ मैंने आपको क्रोध दिलाने की चेष्टा की किंतु आप विचलित नहीं हुए। आखिरकार मैं हार गया। उन्होंने कहा — ‘आप बेकार ही मेरी प्रशंसा कर रहे हैं। मुझसे अधिक क्षमाशील तो बेचारे कुत्ते होते हैं जो हजारों बार बुलाने और दुत्कारने पर भी बराबर आते-जाते रहते हैं।’ इसमें कोई प्रशंसा की बात नहीं है।

सज्जन के समझ में आ गया कि यह व्यक्ति अपने दुर्गुणों पर विजय प्राप्त कर चुका है, लेकिन फिर भी एक बार और परीक्षा लेने के लिए उसने उन्हें फटकारा और जाने के लिए कहा। वे चले गए। सज्जन व्यक्ति ने फिर नौकर को भेजा और उन्हें बुलाया। वे फिर आए लेकिन तब भी उनके भावों में कोई अंतर नहीं आया था। यह देखकर सज्जन ने उन्हें प्रणाम किया और यथोचित सत्कार किया। उसे हकीकत में ही जीवन में मुक्ति का आनन्द मिलता है जो सुख की प्राप्ति होने पर संयम और दुःख आने पर धैर्य रखा करता है।

एक प्यारी-सी कहानी है। एक व्यक्ति अत्यन्त गरीब था। उसकी पत्नी एवं दो नन्हें बच्चे 3-4 दिन से कुछ नहीं खाने को मिलने के कारण भूख से बिलबिला रहे थे फिर भी वह अपने परिवार का भरण-पोषण करने में असमर्थ था। दुश्चिन्ता से ग्रस्त, गरीबी एवं दुःखों से घबराकर वह आत्म-हत्या के लिए नदी की ओर जाता है। नदी के किनारे एक किसान का खेत था। वह अपने खेत

में मकई तोड़कर इकट्ठी कर रहा था। उधर से आते हुए व्यक्ति को देखकर उसने सोचा कोई अतिथि ब्राह्मण आ रहा है। यह सोचकर उसने उसको तीन मकई दी। मकई प्राप्त होने पर उस व्यक्ति ने आत्म-हत्या का विचार त्याग दिया। दशहरे का दिन जानकर उसने राजा भोज को इन्हें भेंट में देने का विचार किया किन्तु मार्ग में किन्हीं बालकों ने अवसर देखकर पोटली में से मकई निकालकर तीन अधजली लकड़ियाँ रख दी। वह व्यक्ति पोटली लेकर दरबार में चला गया। तीन अधजली लकड़ियों की भेंट देखकर मंत्रीगण एवं राजा क्रुद्ध हो गए। तभी वहाँ बैठे महाकवि कालिदास ने उस व्यक्ति के प्रति दया दिखाते हुए भोज से कहा — 'हे राजन्! इन तीन अधजली लकड़ियों में एक रहस्य छिपा है।' राजा ने आश्चर्य से पूछा — 'लकड़ियों में रहस्य! कृपया आप मुझे बताइए।' कालिदास ने कहा — 'ये तीन लकड़ियाँ दर्शाती हैं कि इस विश्व में तीन महापुरुष हुए हैं। उन तीनों ने तीन बुराइयों को खत्म किया। पहले हैं आदिनाथ भगवान, जिन्होंने सम्पूर्ण कषायों को जलाकर मुक्ति प्राप्त की। दूसरे हैं हनुमान, जिन्होंने मान-कषाय के प्रतीक सोने की लंका दहन कर ख्याति-प्राप्त की। तीसरे अर्जुन हैं - जिन्होंने खाण्डव वन को भस्म किया। हे राजन्! आप भी सम्पूर्ण गरीबी को जलाकर चौथी बुराई को खत्म कर सकते हैं। राजा भोज ने सोचा — कालिदास ठीक कह रहे हैं। मैं इसकी शुरुआत इसी गरीब की विपन्नता को दूर करके कर देता हूँ। राजा ने उस व्यक्ति को धन-धान्य से संपन्न कर दिया।

पुण्य-पाप का, शुभाशुभ का खेल कब, कहाँ और कैसे किस ओर ले जाएगा, कुछ कहा नहीं जा सकता है। जो गरीब व्यक्ति दुःखों के कारण आत्म-हत्या की ओर अग्रसर हो रहा था उसके लिए जंगल में भी मंगल हो गया। इसी तरह पाप का उदय होने पर महल भी जंगल में तब्दील हो जाता है। उस समय व्यक्ति कुछ भी करे निराशा ही हाथ लगती है और पुण्यवान व्यक्ति मिट्टी में हाथ डाले तब भी उसे सोना मिलता है। बड़ी विचित्रता है कभी सुख के महल में रहने वाला राजा रंक बन जाता है और दर-दर की ठोकर खाता है। इराक का बादशाह सद्दाम हुसैन इसका साक्षात् उदाहरण है और कभी 500 रुपये की नौकरी करने वाला धीरूभाई अंबानी रंक से धनवान बनकर महलों के सुख का उपभोग करता है। पाप-पुण्य के खेल को समझकर हमें न तो सुख में

अभिमान करना चाहिए न ही दुःखों से घबराना चाहिए। उपकारी के उपकार को कभी नहीं भूलना चाहिए। सभी से मैत्री भाव रखते हुए सहयोग और सेवा की भावना सदा रखनी चाहिए।

विश्व के जितने भी महापुरुष हैं, वे हमें सदा प्रेरणा देते हैं जो तुम्हारा बुरा करे उसका भी भला करो, समता से सब कुछ सहन करो। पुण्य अनुकूलता और सुख प्रदान करता है जब कि पाप प्रतिकूलता और दुःख का कारण है।

यदि हमारे ऊपर पाप के काले बादलों का उदय हो गया है तो व्यक्ति कितना भी परिश्रम करे उसे इन्हें झेलना ही पड़ेगा। हमें दुःख से घबराने की बजाय इनकी जड़ों अर्थात् पापों से दूर रहना चाहिए। प्रकृति का यह नियम है यहाँ जो अपनी ओर से दिया जाता है पुनः वही लौटकर आया करता है। इसलिए तुम्हें अपनी ओर से दूसरों को वही देना चाहिए जो तुम दूसरों से प्राप्त करना चाहते हो अगर गाली चाहते हो तो गाली और गीत चाहते हो तो गीत दो।

हम समझ गए होंगे कि पुण्य भी लोटता है और पाप भी लौटकर आता है। यदि दुःख से मुक्त होना है तो पाप से मुक्त होना होगा। इस संसार में पापी अपने पाप से ही पकता है अर्थात् दुःखी होता है। दुनिया में पापियों का जीना और मरना दोनों ही अहितकारी है, क्योंकि वे मरने पर अंधकार (दुर्गति) में पड़ते हैं और जीवित रहकर प्राणियों के साथ वैर बढ़ाते हैं। जिससे उन्हें इस संसार में भी अनेक तरह से दुःख भोगने पड़ते हैं। हाल ही में गुड़गांव में किड़नियों को निकाल के बेच कर करोड़ों का फ़रोक्त धंधा करने वाला डॉ. अमित गुप्ता आज अपने किये कर्मों पर पछता रहा है और दुःखों को भोग रहा है। यदि वह ऐसे ग़लत कार्यों से स्वयं को दूर रखता तो आज वह सुख की रोटी व चैन की नींद ले रहा होता।

बबूल का बीज बोकर आम की आशा रखना व्यर्थ है वैसे ही पाप का आश्रय ले पुण्य-फल की, सुख-प्राप्ति की आशा रखना दुराशा मात्र ही है।

सूत्रकृतांग में कहा गया है —

सीहो जहा खुड्डमिगा चरंता, दूर चरति परिसंकमाणा।
एवं रवु मेहावी समक्खि धम्मं, दूरेण पावं परिवज्जएजा ॥

जैसे मृग चरते-चरते सिंह की आशंका से दूर रहता है। वैसे ही विवेकी व्यक्ति भी धर्म का आचरण करते हुए पाप कर्म से दूर रहते हैं। पाप करते समय जीव को परिणामों का ख्याल नहीं रहता परन्तु बाद में वह परवश हो जाता है। इस परवशता से बचने के लिए हमें भीतर में पाप भीरुता को विकसित करना चाहिए।

बड़ का बीज बहुत छोटा होता है, परन्तु उसमें वटवृक्ष बनने की क्षमता होती है। वैसे ही छोटे से पाप को अनुकूलता मिलने पर वह भयंकर रूप धारण कर लेता है। अग्नि की चिंगारी दिखने में भले ही छोटी हो परन्तु वह घास या रुई के ढेर पर गिर जाए तो विकराल बन जाती है और सर्व विनाश कर देती है। छोटा-सा दूषित विचार भी कषायों के संसर्ग से पूरे जीवन को दूषित करने वाला बन जाता है इसलिए छोटे से पाप के विचार से भी हमें बचना चाहिए।

अज्ञानी व्यक्ति दुःख आने पर निमित्त पर दोषारोपण करता है, पर अपने किए गए पाप के उदय का विचार नहीं करता। सबको कहता है उसके कारण मुझे नुकसान हुआ। अमुक के कारण मेरा घर बर्बाद हो गया। भीतर-ही-भीतर विलाप करता हुआ वह चिंता-तनाव मग्न हो जाता है और अपने चित्त की प्रसन्नता को खो देता है।

दुःख की इसी स्थिति में ज्ञानी व्यक्ति की चित्त की दशा ठीक विपरीत होती है। संकट की घड़ी आने पर वह सोचता है यह मेरे किये गए कर्मों का ही परिणाम है। ऐसा व्यक्ति किसी पर दोषारोपण नहीं करता और आए हुए दुःख को समभावपूर्वक सहन करता है। चाणक्य-नीति में कहा गया है —

यथा धेनु सहस्रेषु, वत्सो विन्दति मातरम्।
तथैवैह कृतं कर्म, कर्तारमनुगच्छति॥

हजारों गायों के होने पर भी बछड़ा सीधा अपनी माता के पास जाता है वैसे ही इस संसार में कृत-कर्म अपने कर्ता का ही अनुसरण करता है अर्थात् उसी को सुख-दुःख का फल देता है।

फ्रांस के महाकवि फ्रेन्कुइस अपनी बाल्यावस्था में मेधावी और प्रतिभावान् छात्र थे, पर यौवनकाल में आवारा-अपराधी मित्रों की संगति में आ जाने के कारण उनके जीवन में अपराधों का प्रवेश हो गया। जब काटने से शुरू

हुआ सिलसिला चोरियाँ, वेश्यागमन और लुटेर बनने में तब्दील हो गया और एक दिन पुलिस के हाथों वे पकड़े गये। प्राणदंड की सजा सुनायी गई।

फ्रेन्कुइस कारावास में अपने स्नेही-स्वजनों से अंतिम बार मिल रहे थे। अचानक न्यायालय ने सजा बदल दी। प्राणदंड की जगह उन्हें देशनिकाला दिया गया और तीन दिन में पेरिस छोड़कर चले जाने का उनको आदेश मिला।

सजा में परिवर्तन करवाया था फादर ग्युलैभी ने। पेरिस में फादर ग्युलैभी का अच्छा प्रभाव था। आचरण और उपदेशों से उनका महान् व्यक्तित्व पूरे देश में छाया हुआ था। उन्होंने फ्रेन्कुइस की प्राणदंड की सजा सुनी और उनका हृदय दुःखी हो गया। 'फ्रेन्कुइस को सुधरने का एक और मौका मिलना चाहिए, संभव है उसकी जीवनधारा ही बदल जाए।' उन्होंने फ्रेन्च सरकार से फ्रेन्कुइस को क्षमा करने की प्रार्थना की। सरकार ने सजा बदल दी।

फ्रेन्कुइस जब पेरिस छोड़कर जाने लगे तब फादर ग्युलैभी नगर के दरवाजे तक पहुँचाने गये। फ्रेन्कुइस को पता चल गया था कि प्राणान्त-दंड से बचाने वाले फादर ग्युलैभी ही हैं। उन्होंने फादर की आँखों में करुणा का समुद्र देखा। मुख पर प्रेम का प्रकाश देखा।

एकांत में जीवन व्यतीत करते उन्हें कभी स्नेहीजन याद आते तो कभी फादर ग्युलैभी की प्रेमपूर्ण मुखमुद्रा याद आती है..... इन स्मृतियों ने उसके मर्मस्थान का स्पर्श किया। उनके भीतर नयी जीवनधारा मोड़ लेने लगी और उन्होंने नया जीवन जीने का संकल्प किया। उन्होंने अपनी पीड़ा, व्यथा, वेदना और पश्चात्ताप को काव्यों में उतारा और वेदना भरे काव्यों का एवं करुणापूर्ण साहित्य का सृजन किया। यही संवेदनाओं से भरे काव्य फ्रांस में लोकप्रिय बन गए। फादर ग्युलैभी ने जब फ्रेन्कुइस के काव्यों को पढ़ा तो उनकी आँखें सजल हो गईं।

फ्रेन्कुइस की गणना फ्रांस के श्रेष्ठ कवि के रूप में और श्रेष्ठ साहित्यकार के रूप में आज भी की जाती है।

पाप की संगति इंसान को गिरा देती है और पुण्य की संगति लुटेरे को भी महान लेखक बना देती है। तभी तो कहा गया है —

‘कर्मन की गति न्यारी’

सुखी होने के लिए पुण्य की संगति व पाप की निसंगता ज़रूरी है। आज दुनिया में चारों ओर दुःख, भय और संताप में वृद्धि होती जा रही है। इसका एकमात्र कारण पाप से भीति और धर्म से प्रीति का अभाव है।

कुछ लोग पाप करने के बाद उसे पुण्य से छिपाना चाहते हैं परन्तु वह छिपा नहीं रह सकता। कहा गया है —

पाप छिपाये ना छिपे, छिपे तो मोटा भाग।
दाबी-दूबी ना रहे, रुई लपेटी आग॥

पाप कर्म में लिप्त रहने वाले मनुष्य अधम होते हैं, राजदण्ड के भय से पाप आचरण नहीं करने वाले सामान्य होते हैं। मध्यम स्तर के व्यक्ति परलोक के भय से, पर उत्तम व्यक्ति अपने स्वभाव से ही पाप का आचरण नहीं करते हैं।

हमें अशुभ से शुभ और शुभ से शुद्ध की ओर अपने जीवन को मोड़ कर धरती पर प्रेम, अहिंसा और सत्य के फूल खिलाने हैं ताकि न केवल हमारा जीवन महक से भर जाए वरन् इंसानियत भी इससे सरोबार हो जाए।



मन को बनाएँ अपना मीत

बच्चों की चंचलता व मन की चंचलता में ज़्यादा फ़र्क़ नहीं है, जरूरत है केवल समझाने की

हमारी पाँचों इन्द्रियों का मुख्य केन्द्र मन है। हम पाँचों इन्द्रियों को स्वच्छ रखते हैं, किन्तु मन की स्वच्छता को गौण कर देते हैं। सुबह उठते ही हाथ-मुँह धोते हैं, दाँत साफ़ करते हैं, शरीर को स्वच्छ-सुन्दर बनाते हैं। घर को ख़ूब साफ़-सुथरा एवं व्यवस्थित रखते हैं। सफ़ाई का कारण पूछने पर आपका एक ही ज़वाब रहता है मुझे गंदगी ज़रा भी पसंद नहीं है, पर आपने कभी सोचा कि इन इन्द्रियों का कार्यवाहक केन्द्र मन कितना स्वच्छ है? आप कभी भी यह नहीं कहते हैं कि मुझे मन की गंदगी बिल्कुल भी पसंद नहीं है। मैं शरीर और घर की तरह मन को शुद्ध, स्वच्छ रखना चाहता हूँ। हमारे मन में अपवित्र, अशुद्ध, एवं मलिन विचारों का कूड़ा-कर्कट जमा हुआ है। क्या हम कभी इनके बारे में सोचते हैं? पुराणों में मन को मलिन बनाने वाले बारह दोष बताए गए हैं। नगर पालिका की कचरा पेटी से भी ज़्यादा कचरा भरा पड़ा है हमारे मन में।

शोक, क्रोध, लोभ, काम, माया-मोह, आलस्य, ईर्ष्या, मान, सन्देह,

पक्षपात और दोषारोपण। ये बारह मन के दोष हैं, जिनके कारण जीवन की शांति, सद्बुद्धि एवं मस्ती नष्ट हो जाती है। इनमें से एक दोष भी अनर्थ का कारण बन जाता है फिर अधिक होने पर तो कहना ही क्या? एक दोष इंसान को पागल बना देता है इसलिए छोटे से दोष में सावधान रहना चाहिए। ऐसा हुआ, एक पागल आदमी आत्महत्या करने के लिए बिजली के खम्भे पर चढ़ गया, पुलिस और अनेक नेताओं के कहने पर भी वो नीचे आने को तैयार नहीं हुआ, कुछ देर बाद एक दूसरे पागल ने कहा, अगर तू जल्दी से नीचे नहीं आया तो मैं यह खम्बा उखाड़ कर फेंक दूँगा। पहला पागल झट से नीचे आ गया। पत्रकारों के पूछने पर पहले पागल ने बताया कि नेता और पुलिस वाले तो सिर्फ कहते हैं, करते कुछ नहीं। यह तो पागल है, जो कहेगा, वो कर डालेगा। हमारी स्थिति भी ऐसी हो जाती है। फिर किसी भी शुभाशुभ कृत्य का हमें ध्यान नहीं रह पाता है।

मुख्य प्रश्न है मन कैसे पागल होता है? उसमें पागलपन की गंदगी कैसे आती है? आपका सोचना सही है जब तक इसका ज्ञान नहीं होगा तब तक शुद्धि की बात कैसे की जा सकती है?

एक आदमी ने गर्मी के मौसम में बहुत तेज आँधी चलने से घर के सारे दरवाजे खिड़कियाँ बंद कर दी ताकि मिट्टी आने से घर गंदा न हो जाए, पर घर में घुटन होने से वह बाहर आकर बैठता है। कपड़े गंदे होने से बचे रहे इसलिए कुर्ता-बनियान भी उतार देता है। घर के और कपड़ों के गंदे होने की चिंता में उसका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। सारा शरीर रेत के कणों से भर जाता है, गर्म हवा उसे बीमार कर देती है। सचमुच, हमारा ध्यान घर और कपड़ों पर जाता है, पर स्वयं पर नहीं जाता।

यही बात हमारे मन के संबंध में है। चारों ओर खराब विचारों की आँधी में पाँचों इन्द्रियों के विषयों की गर्म हवा चल रही है और मनुष्य अपने दिमाग के कपाट को बंद कर देता है। जिससे मलिन विचार एवं विषयों की गर्म हवा उसके मन को मलिन एवं दूषित कर देती है।

यदि इन्द्रियों से गलत आचरण हो रहा है तो दोष इन्द्रियों का नहीं, मन का है। सही दिशा में दौड़ता हुआ रथ यदि गलत मार्ग पर चला जाता है तो दोष

घोड़ों का नहीं सारथी का है। ये इन्द्रियाँ रेल के डिब्बों की तरह हैं जिसका इंजन मन है। यदि डिब्बों को मन रूपी इंजन नहीं खींचेगा तो इन्द्रियाँ रूपी डिब्बे आगे नहीं बढ़ सकते। स्वयं दिशा नहीं बदल सकते। उन्हें तो जिस दिशा में इंजन ले जाएगा वह उसी तरफ चले जाएंगे।

* मन की दिशा और दशा ही इन्द्रियों की दिशा और दशा है। इन्द्रियों को वशीभूत करने के लिए मन को वशीभूत करना आवश्यक है। मन सुधरा तो समझो सब कुछ सुधरा गया और मन बिगड़ गया तो सब कुछ बिगड़ गया। मन चंगा तो कठौती में गंगा।

जब हमारे मन में अशुभ विचार आते हैं तब हम उनको भगाते नहीं हैं, खदेड़ते नहीं हैं, अपितु विचारों की श्रृंखला में बह जाते हैं। और वे विचार हमारे मन में प्रवेश करके हमें दूषित बना देते हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी की निंदा करता है तो करने वाला तथा सुनने वाला घंटों तक नहीं थकते, पर यदि प्रशंसा करनी हो तो दस-पन्द्रह मिनट भी घंटे के समान लगते हैं। सुनने वाले को लगता है जैसे वह बोर हो रहा है।

हमें कभी-भी अशुभ विचारों को अपने भीतर दबा कर नहीं रखना चाहिए। यदि हम उनका संचय करेंगे तो एक-न-एक दिन विस्फोट होगा और सारे जीवन को ले डूबेगा। साथ ही आस-पास का वातावरण भी दूषित हो जाएगा। इस प्रकार के विस्फोट बार-बार होने पर धर्म, समाज और व्यक्ति सभी प्रभावित होते हैं। गंदे विचारों की परतें मन को अशुद्ध एवं अस्वस्थ बना देती हैं। निर्मल और श्रेष्ठ जीवन के लिए हमें अच्छा चिन्तन करना चाहिए, उत्तम संगति में रहना चाहिए। जिस वातावरण, दृश्य या भोजन से मन विकृत हो, पतन की ओर जाए उससे हमें दूर रहना चाहिए।

मान लीजिए कि आप मनोरंजन के लिए सिनेमा देखने जाते हैं सीरियल या नाटक देखते हैं तो अधिकतर यही कहते हैं कितने अच्छे गाने हैं, मधुर संगीत है, दृश्य बहुत रमणीय है, कपड़े कितने सुन्दर हैं, मकान आलीशान है, फाइटिंग में तो मजा आ गया। इसी तरह की नोंक-झोंक हमें अच्छी भले ही लगे, पर जीवन का निर्माण नहीं होने वाला है। इसकी बजाय हम यह ग्रहण करें कि उस व्यक्ति का जीवन सादगी युक्त होते हुए भी कितना रमणीय, सुन्दर

और सौम्य था। अमुक व्यक्ति का व्यक्तित्व मेरे हृदय को छू गया। ऐसी अंतर्प्रेरणा जीवन में उतारने पर हमारा विकास होगा। इस प्रकार के सात्विक विचारों से हमारा मन निर्मल होगा, पवित्र होगा, स्वच्छ होगा। जीवन में सहजता, सौम्यता, सुन्दरता का प्रवेश होगा।

विकृत मन के कारण व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, निंदा से ग्रसित हो जाता है और यहीं से पतन की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। पतन किसी का भी हो सकता है फिर चाहे वह विद्वान हो या मूर्ख, अमीर हो या गरीब। एक बार जो सीढ़ी से फिसल गया, फिर वह गया काम से। इसलिए जीवन की हर सीढ़ी में सावधानी रखना आवश्यक है।

दो मित्र बलराम और श्याम शास्त्रों का अध्ययन करने के लिए आठ साल से बनारस में रह रहे थे। अध्ययन पूर्ण कर दोनों अपने गाँव लौट रहे थे। रास्ते में भीषण गर्मी थी। लू के थपेड़े चल रहे थे। उनसे बचने के लिए उन्होंने एक हवेली में 2-3 घंटे विश्राम करने के लिए आश्रय माँगा। मस्तिष्क पर तिलक, गले में जनेऊ, धोती, कुर्ता, थैले से युक्त उनको देखकर सेठ ने समझा ये कोई पंडित हैं।

सेठ अपने घर अतिथि विद्वान ब्राह्मणों को देखकर अत्यधिक आनन्द का अनुभव करने लगा। उनको स्वल्पाहार करवाकर स्नान के लिए निवेदन किया। बलराम स्नान करने गया। सेठ ने उनके जीवन, शास्त्राध्ययन एवं स्वाध्याय के बारे जानने के लिए श्याम के साथ सत्संग किया।

पंडित श्याम बलराम की अनुपस्थिति देखकर स्वयं की तारीफ़ करने लगा, उसने कहा मैं आपको क्या बताऊँ संस्कृत, व्याकरण, काव्य, न्याय, रामायण, महाभारत, गीता तो मेरे रोम-रोम में बस गए हैं। धाराप्रवाह संस्कृत, प्राकृत बोलना मेरे लिए गंगा प्रवाह की तरह है। वेद, पुराण तो मेरी जिह्वा पर है।

सेठ ने बलराम के लिए कहा वे पंडित जी भी विद्वान प्रतीत होते हैं। यह सुनते ही श्याम का मन ईर्ष्या से भर गया। उसने कहा — बलराम! वह तो बिल्कुल गधा है उसे कुछ नहीं आता। वह पूरा दिन इधर-उधर खेलने में, खाने-पीने, मौज-शौक में बिताता था। पंडित श्याम के मुख से ये वचन सुनकर सेठ जी हैरान रह गए उन्होंने मन में सोचा इन्होंने शास्त्रों का तो ज्ञान प्राप्त कर

लिया है, पर व्यावहारिकता, विनम्रता, गुण ग्राहक व्यक्तित्व अभी भी नहीं सीख पाएँ हैं। केवल आत्म प्रशंसा करना जानते हैं।

बलराम के आते ही श्याम स्नान करने गया। सेठजी ने बलराम की भावनाओं से परिचित होने, परीक्षा लेने और अध्ययन की जानकारी प्राप्त करने के लिए उससे श्याम के बारे में पूछा। बलराम ने कहा, 'अरे सेठजी! स्नान से पवित्र हुए के समक्ष आपने किस मूर्ख का नाम ले लिया वह तो बैल है। बनारस में उसने पढ़ाई नहीं की। मेरे साथ है इसलिए लोग उसे भी पंडित समझते हैं।'

सेठ भोजन के प्रबंध करने का कहकर चले गए। समय होने पर दोनों पंडितों को ससम्मान भोजन कक्ष में आमंत्रित किया गया। सेठ ने उन्हें आसन ग्रहण करने के लिए निवेदन किया। दोनों के समक्ष अलग-अलग ढकी हुई भोजन की थाली रखी गई।

दोनों ने जैसे ही वस्त्र हटाया थाली देखकर आक्रोश में भर आए, भौहें टेढ़ी हो गई, होठ फड़फड़ाने लगे, नाथूने फूलने लग गए। दोनों चिल्लाए — सेठजी हमारा ऐसा घोर अपमान! यह क्या परोसा है?

चूँकि, भोजन इंसानों का न होकर जानवरों का था। सेठजी ने प्रेमपूर्ण निवेदन करते हुए कहा, आप दोनों ने जो परिचय दिया उसके अनुसार भोजन ऐसा ही होता है।

दोनों ने एक दूसरे को देखा। सेठ के चरणों में गिरकर प्रणाम करते हुए कहा — सेठजी! आपने हमारी आँखे खोल दी हैं। हमने मात्र क्रिताबों का ज्ञान प्राप्त किया। सद्विचार, सद्व्यवहार, सद्आचार, सत्संगति के अभाव में हम ईर्ष्यालु, द्वेष-भाव से युक्त हो गए थे। स्वयं को श्रेष्ठ एवं दूसरे को नीचा दिखाने के भाव से हमारा मन ग्रसित हो गया था। अब हम समझ गए हैं कि जीवन का सत्य क्या है? मन का पवित्र होना आवश्यक है। आज इस संसार में प्रेम की गंगा सूख गई है और धरती पर चारों तरफ विद्वेष, कलह और विघटन की दरारें पड़ गई हैं।

स्वयं को श्रेष्ठ बताकर दूसरों को नीचा दिखाने की कोशिश ने इंसान का विकास अवरुद्ध कर दिया है। हमें मन को शुद्ध करने के लिए ईर्ष्या की मानसिकता का त्याग करके शुभ भावों का विस्तार करना चाहिए। शुभ भावों

के विस्तार के लिए सकारात्मक सोच के साथ सांसारिक दायित्व का निर्वाह करते हुए आसक्ति से परत रहना ज़रूरी है ।। आसक्ति दुःख की जननी है । जितनी ज़्यादा आसक्ति होगी उतनी ही राग-द्वेष की अनुभूति होगी, उतना ही हम स्वयं को अशांत अनुभव करेंगे ।

मन के अशांत रहने से व्यक्ति की सात्त्विक बुद्धि तिरोहित हो जाती है । करणीय-अकरणीय का विवेक समाप्त हो जाता है । विवेक के समाप्त होने पर आचरण अंधा हो जाता है । यह अंधापन जीवन का बंधन है और इस अंधेपन से मुक्ति ही जीवन का मोक्ष है । कहा भी गया है —

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः ।

मन ही मनुष्यों के बन्धन एवं मोक्ष का कारण है । हमें संसार की चिन्ता करने की बजाय अपने मन को सुधारना चाहिए ।

**अरे सुधारक! जगत की, चिन्ता मत कर यार ।
तेरा मन ही जगत है, पहले इसे सुधार।।**

हम ठीक इसके विपरीत कर रहे हैं । अपने मन को सुधारते नहीं हैं और जगत् को सुधारने की बात करते हैं । मूल को नहीं सींचते हैं, उसके पत्तों और शाखाओं का सिंचन करते हैं । इसी के चलते हमारा मन अस्वस्थ एवं अशुद्ध हो रहा है । बहुत से लोग शरीर से हृष्ट-पुष्ट, सुख साधनों से परिपूर्ण होते हैं, पर उन्हें रात-दिन चिन्ता सताती रहती है । वे व्यक्ति कहीं भी जाए उनकी उपस्थिति न होने के बराबर होती है । ऐसे व्यक्तियों का जीवन दयनीय बन जाता है । इसका मूल कारण है मन की वृत्तियों पर नियंत्रण की कला का अभाव । परिणाम स्वरूप ज़रा-सी बात में मन चंचल, व्यग्र] चिन्तातुर और उदास हो जाता है । मन की स्फूर्ति, प्रसन्नता और ताजगी जिस प्रकार की रहनी चाहिए वह समाप्त हो जाती है । मन को मित्र बना लेने पर सारी दुनिया स्वतः मित्र बन जाती है ।

‘मन विजेता, जगतो विजेता’

जो मन को जीत लेता है वह सारे विश्व को जीत लेता है ।

हम आज इतने अशांत क्यों हैं ? यदि इसके लिए चिन्तन करें, स्वयं का अवलोकन करें तो पाएँगे कि हमारी अपनी प्रवृत्तियों के कारण, क्रियाओं के

कारण और सोच के कारण ही हम अशांत हैं। ऐसा हुआ, संता भिखारी ने बंता से कहा — मैं बहुत लाचार हूँ, कुछ खाने को दे दीजिए। मिसेज बंता बोली — हट्टे-कट्टे तो दिख रहे हो। हाथ-पैर भी सलामत हैं। फिर किस बात से लाचार हो ? संता भिखारी बोला — जी अपनी आदत से।

सहिष्णुता का हास, दूसरों की उन्नति के प्रति ईर्ष्या-भाव और दूसरों से स्वार्थ युक्त अपेक्षाएँ रखने के कारण हम अशांत होते जा रहे हैं। हम इसलिये दुःखी नहीं हैं कि हमारे पास कम है हम इसलिए दुःखी हैं क्योंकि पड़ोसी हमसे ज्यादा सुखी है।

किसी जिज्ञासु ने मुझसे पूछा, क्या कारण है कि आपके पास कुछ भी नहीं है, फिर भी आप हमेशा प्रसन्न और आनंदित रहते हैं, जबकि मेरे पास सब कुछ है, फिर भी मैं दुःखी और परेशान रहता हूँ।

मैंने उस जिज्ञासु से कहा — चलो, बाहर चलते हैं। वहीं बैठकर चर्चा करेंगे और मैं उसे लेकर स्थान के बाहर आ गई। हम एक शिलाखंड के पास बैठ गए। शिलाखंड के एक तरफ तो आकाश को छूता हुआ देवदार का वृक्ष था, तो दूसरी तरफ एक नन्हा-सा गुलाब का पौधा था। मैंने जिज्ञासु से कहा — इन दोनों वृक्षों को जरा गौर से देखो। इन्हें मैं कई दिनों से देख रही हूँ। इन्हें मैंने आपस में कभी लड़ते-झगड़ते नहीं देखा। मैंने इन्हें एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हुए कभी नहीं देखा। मैंने इन्हें कभी एक-दूसरे जैसा होने की कुचेष्टा करते हुए भी नहीं देखा। बल्कि मैंने देखा कि हवाओं के बहने पर जिस मस्ती में देवदार झूमता है उसी मस्ती में यह नन्हा पौधा भी झूमता है। मैंने देखा है कि जिस आनंद में भर यह छोटा पौधा डोलता है, उसी आनंद से भरकर वह विशालकाय वृक्ष भी डोलता है। मैंने देखा कि हवाओं के संग जैसे यह देवदार नाचता है, ठीक उसी लय में यह गुलाब का पौधा भी नाचता है।

मैंने अनुभव किया है कि देवदार अपने होने में राजी है और गुलाब अपने होने में राजी है। इसलिए दोनों सुखी हैं और मैं भी अपने होने में राजी हूँ। मैं जो भी हूँ, उसमें संतुष्ट हूँ। इसलिए मैं भी सुखी हूँ। लेकिन तुम अपने होने में राजी नहीं हो। तुम दूसरों जैसा बनना चाहते हो, दूसरों जैसा प्राप्त करना चाहते हो। बस, यह दूसरों जैसा बनने और होने की कुचेष्टा ही तुम्हारे दुःख का कारण है।

तुम भी अपने होने में राजी हो जाओ तो तुम्हारे भी सभी दुःख जाते रहेंगे और सुखी हो जाओगे, पीड़ाएँ जाती रहेंगी, परेशानियाँ कम हो जाएगी।

स्वयं के पास जो कुछ है उससे हम संतुष्ट नहीं हैं भीतर में और अधिक पाने की प्रलोभन-प्रवृत्ति भी हमारी अशांति का एक कारण है। व्यक्ति को जब ज्ञान से कहीं अधिक अभिमान हो जाता है तो वह पानी में उठते हुए बुलबुले की तरह अस्थिर हो जाता है, यह भी अशांति का कारण है।

इसी तरह जीवन जीते रहेंगे तो क्रदम-क्रदम पर हमें अशांति के शूल चुभते रहेंगे। हमें उन कारणों का निवारण करते हुए स्वयं के भीतर सकारात्मक सोच को बढ़ाना होगा। तभी हम शांति प्राप्त कर सकेंगे। भीतर में सकारात्मक धारा मन पर विजय प्राप्त करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

अधिकांश व्यक्ति यह कहते हुए पाए जाते हैं कि मन को जीतना बहुत कठिन काम है। बड़े-बड़े योगी भी असफल हो गए हम तो साधारण व्यक्ति हैं। यह सोच गलत है। कोई भी कार्य असंभव नहीं है। वस्तु को प्राप्त करने की व्यक्ति की प्रबल रुचि और उसे प्राप्त करने का प्रबल पुरुषार्थ सफलता के लिए पर्याप्त है। व्यक्ति पुरुषार्थी हो तथा वस्तु प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा हो तो कोई भी कार्य कठिन नहीं है। मन को वश में करने का सर्वश्रेष्ठ एवं सरल उपाय के रूप में हमें इस मंत्र का उपयोग करना चाहिए —

‘अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः’

अभ्यास और वैराग्य, इन दोनों से मन का विरोध होता है।

भगवद्गीता में कर्मयोगी श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था —

‘अभ्यासेन तु कौन्तेय! वैराग्येण च गुह्यते।’

हे अर्जुन! अभ्यास और वैराग्य से मन का निरोध होता है।

वैराग्य एवं अभ्यास की निरंतरता से चंचल मन को वशीभूत किया जा सकता है। सर्कस कम्पनी वाले हाथी, घोड़े, कुत्ते को भली-भाँति कार्य के अनुसार शिक्षा देकर अपने वश में कर लेते हैं। वे अपनी चंचलता का त्याग कर अपने मालिक के निर्देशानुसार करतब दिखाते हैं, जिससे दर्शक आश्चर्यचकित हो जाते हैं। किन्तु इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए हम

मन के घोड़े पर सवारी करें, पर कहीं ऐसा नहीं हो कि वह हम पर सवार हो जाए।

ब्रह्मा वाहन हंस किया, विष्णु गरुड़ असवारी रे।
शिव का वाहन बैल बना है, मूषक गुणधारी रे।
मन वाहन पर बैठे विरला, वा नर की बलिहारी रे।

जो मन के घोड़े पर सवार होने की कला जानता है वही वास्तव में साधक है, विद्वान है, सार्थक जीवन का मालिक है।

• सिकन्दर विश्व विजय करने की महत्त्वाकांक्षा से निकला। असाधारण प्रतिभा और योग्यता का धनी और निरंतर विजयी होने के कारण उसके दम्भ में वृद्धि हो गई थी। एक तरफ दम्भ और दूसरी तरफ विजय प्राप्त करने का उन्माद में पागल बना वह हज़ारों नगरों और गाँवों को ध्वस्त करता गया। निर्ममतापूर्वक नरसंहार करते हुए अपार धन सम्पदा लूटी। अखुत सम्पदा का वह क्या करता ? उसने अपने सैनिकों को भी मालामाल कर दिया।

एक बार वह एक ऐसे नगर में गया जहाँ के सभी पुरुष युद्ध में पहले ही शहीद हो चुके थे। स्त्रियाँ और बच्चे असहाय हो गए थे। सिकन्दर ने शस्त्रहीन स्त्रियों को देखकर मैं इनके साथ कैसे युद्ध करूँ। यह सोचकर उसने एक घर के सामने घोड़ा रोका। कई बार दरवाज़ा खटखटाने पर एक बुढ़िया ने घर का दरवाज़ा खोला।

बुढ़िया घर के भीतर गई और कपड़े से ढका थाल लेकर आई। उसने थाल को सिकन्दर के आगे कर दिया। सिकन्दर ने थाल लेकर भोजन करने के लिए उस पर से कपड़ा हटाया, पर उसने देखा कि थाल में भोजन की बजाय कुछ पुराने सोने के जेवर थे।

सिकन्दर ने क्रोध में कहा — बुढ़िया! तुम यह क्या लाई हो ? क्या मैं इन सोने के गहनों को खाऊँगा ? मैंने तो तुमसे रोटियाँ माँगी थी।

बुढ़िया ने बहुत ही विनम्रता से कहा — सिकन्दर, मैंने तेरा नाम लोगों के घर उजाड़ने में, लूटपाट करने में बहुत सुना था। आज तेरा साक्षात् दर्शन भी कर रही हूँ। मैंने यह भी सुना था कि सोना ही तुम्हारा भोजन है। इस भोजन को प्राप्त करने के लिए न मालूम तू कितनी ललनाओं की माँग पाँछता हुआ, माताओं की

गोद सूनी करता हुआ, बच्चों को अनाथ करता हुआ, यहाँ आया है। यदि तेरी भूख अनाज की रोटियों से मिटती तो क्या तेरे देश में रोटियाँ नहीं थी? फिर तूझे आक्रमण करने की आवश्यकता क्यों पड़ी?

सिकन्दर के दम्भ का शिखर धराशायी हो गया। वह बुढ़िया के चरणों में गिर पड़ा, माँ तूने आज मेरी आँखें खोल दी। फिर बुढ़िया ने उसे स्नेहपूर्वक भोजन कराया। लूटपाट करने वाले सिकन्दर का हृदय परिवर्तन हो गया था और वह भक्षक से रक्षक बन गया। उसने अपनी लालसाओं को वश में कर लिया। और नगर में किसी प्रकार का नुकसान न पहुँचाते हुए जाने लगा, पर नगर से जाते-जाते वहाँ एक शिलालेख लगा गया — 'अज्ञानी सिकन्दर को इस नगर की एक बुढ़िया ने जगा दिया है।'

हम मन को जानने व साधने का प्रयत्न नहीं करते हैं जबकि हमें इस पर बार-बार चिन्तन, मनन, अभ्यास करते रहना चाहिए। यदि हमारा मन वश में नहीं है तो एकाग्रता और स्वच्छता मन में नहीं आ सकती, न ही मन समस्या से बच सकता है। मन की हर समस्या के साथ भीतर में समाधान भी जुड़ा हुआ है। इसके लिए ज़रूरी है, सकारात्मक सोच के साथ दृष्टि का बदलाव तथा ज्ञान का सम्यक् होना। यदि यह बदलाव आता है तो निश्चित रूप से हमारे आचरण और व्यवहार स्वयमेव परिवर्तित होंगे तथा हमारे समक्ष नया जीवन दर्शन होगा। दृष्टि में बदलाव के पश्चात् हमारी जीवन-शैली में बदलाव होना चाहिए। समभाव में रहने की कला को विकसित करना चाहिए। जहाँ तक हो सके हमें मनोनिग्रह के लिए सहज जीवन जीना चाहिए।

अत्यधिक सक्रियता के इस युग में दिनभर काम करने वाले लोग शाम तक न सिर्फ शरीर से थक जाते हैं, बल्कि मन से भी अशांत हो जाते हैं। तन और मन के परिश्रम को कैसे पृथक रखा जाए, इस विषय पर एक बार कुछ शिष्यों ने अपने गुरुदेव से प्रश्न पूछा। उनकी जिज्ञासा इसलिए भी थी कि वे देखते थे उनके गुरु चौबीस घंटे अत्यधिक सक्रिय दिखते थे, लेकिन फिर भी विचलित नहीं होते, चेहरे पर थकान नहीं आती।

गुरुदेव ने उत्तर दिया — सारा मामला केंद्र पर घटने वाली शांति से जुड़ा है। मनुष्य का केंद्र यानी मन यदि शांत है, मौन है तो परिधि पर कितनी ही

सक्रियता हो, थकान नहीं आएगी। इसलिए महत्वपूर्ण यह है कि हम केंद्र पर क्या छोड़ रहे हैं। उन्होंने शिष्यों को एक घटना सुनाई। एक बार ब्रह्माजी ने सब देवताओं से पूछा — आप लोगों में से प्रथम पूजने योग्य कौन हैं? इसके उत्तर में सभी देवता आपस में उलझ गए। तब ब्रह्माजी ने घोषणा की कि पृथ्वी की परिक्रमा करके जो सबसे पहले हमारे पास पहुँचेगा, वह प्रथम पूज्य होगा। सभी देवता अपने-अपने वाहनों से चल दिए, लेकिन गणेशजी अपने वाहन चूहे के कारण बहुत शीघ्रता से नहीं चल पाए। वे विचार कर ही रहे थे, उसी समय नारद जी वहाँ पहुँचे और उन्होंने सलाह दी — पृथ्वी पर राम नाम लिख लो और उसकी परिक्रमा करके ब्रह्माजी के पास चले जाओ। उन्होंने ऐसा ही किया। तब ब्रह्माजी ने गणेशजी से प्रसन्न होकर उन्हें प्रथमपूज्य होने का वरदान दिया।

गुरुजी ने अपने शिष्यों से कहा — इसका प्रतीकात्मक अर्थ यह है कि केंद्र में यदि राम यानी ईश्वर, एकाग्रता, भक्ति, मौन हैं तो परिधि पर आपकी सक्रियता निश्चित अच्छे परिणाम देगी।

इस प्रकार यदि मन को साधने और सुधारने की कला आ जाए तो शुद्ध मन से बड़े-बड़े कार्य संपन्न किए जा सकते हैं। मूलतः मन मैला नहीं होता है संसार की कुसंगति की धूल इसे मैला कर देती है। भक्ति के जल में भिगो कर, ज्ञान का साबुन लगाकर, वैराग्य से रंगने का अभ्यास करके हम अपने स्वरूप को पहचान सकेंगे, वहाँ तक पहुँच सकेंगे।



शिक्षा को जोड़ें संस्कारों से

आजीविका शिक्षा का एक सामान्य परिणाम है,
शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य संस्कारों का निर्माण करना है।

स्वतंत्रता दिवस-समारोह में मुझे आज यहाँ उपस्थित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ऐतिहासिक अवसर है, यशस्वी क्षण है। जिसके लिए देश के शहीदों ने आजादी की लड़ाई लड़ी वह स्वतंत्रता हमें प्राप्त है। विश्व में अनेक देशों में सत्ता के लिए संघर्ष चलता रहा है। आप लोगों ने शायद आजादी की लड़ाई नहीं देखी, हमने देखी, पर उस समय हमारी बाल्यावस्था थी। इसलिए मुझे ठीक से स्मरण नहीं है। हम आजादी की बातचीत और आजादी के गीत लोगों से मुस्कराते और हँसते हुए सुनते हैं, पर ज़रा चिंतन करें आजादी को पाने के लिए जान न्यौछावर तक की, स्वयं की कुर्बानी दी। हमारे नेताओं को जेल में रखा, गोली से भून दिया गया फिर भी उन देश भक्तों में आजादी पाने की पराकाष्ठा एवं देश को महान् बनाने की प्रबल भावना, सर्वस्व न्यौछावर करने की गहरी आकांक्षा थी। बलिदान की सीढ़ी पर वे चढ़े। अनेक लोग मरे, माताओं की गोद सूनी हुई और महिलाओं की मांग। जिस आजादी को हमने इतने प्रयास से पाया क्या हम उसके मूल्यों को सुरक्षित रख पाये? यदि हम

गहराई से चिंतन करें तो पाएँगे कि भारत की आजादी, अस्मिता, शिक्षा का महान् गौरव, जीवन के महान् सूत्र शनैः शनैः हमारे हाथ से छिटक गये हैं ।

जीवन का अपना ध्येय होता है, लक्ष्य होता है । जिस शिक्षा में जीवन जीने की कोई शैली नहीं होती, कोई महान लक्ष्य नहीं होता, वह शिक्षा व्यर्थ है क्योंकि मनुष्य में जो शारीरिक, मानसिक, आत्मिक शक्तियाँ विद्यमान हैं, वे शिक्षा के द्वारा ही विकसित होकर जीवन का सुन्दर निर्माण कर पाती है । वास्तव में शिक्षा मानव जीवन को सौन्दर्य प्रदान करती है ।

मानव आत्मा के लिए शिक्षा वैसे ही है जैसे पाषाण खंड के लिए शिल्पकला । शिल्पी पाषाण को तराशकर उसमें प्राण फूँक देता है तथा उसके सौंदर्य में अनेक गुणा वृद्धि कर देता है । उसी प्रकार सद्शिक्षा पाशविक वृत्तियों को दूर कर आत्मा के दिव्य स्वरूप का दिग्दर्शन कराती है । स्वयं के स्वार्थ के पोषण में, दूसरों के शोषण में और कुरीतियों, विकृतियों व अंधविश्वासों को पालने में जो लग जाता है, उसकी शिक्षा का कोई अर्थ नहीं है । मनुष्य जीवन एवं शिक्षा की सार्थकता इसमें नहीं है कि मैं सब कुछ प्राप्त करूँ, मैं ही खाऊँ, मैं ही ओढ़ूँ, मैं ही पहनूँ । हमारी शिक्षा में 'ॐ सह नावतु' की पुनीत एवं संगच्छध्वं की अर्थात् हम सब साथ-साथ हैं, हम सब प्राप्त करें, खाएँ, चलें और सभी आगे बढ़ें जैसी ऐक्य भावना होनी चाहिए । वस्तुतः आज विश्व में इसी प्रकार की मंगल भावना की आवश्यकता है, जो 'जीओ और जीने दो' के रूप में अस्तित्व युक्त है । संसार की सम्पूर्ण कामनाएँ ऊँचाइयों को तभी प्राप्त करती है जब शोषण की अपेक्षा अच्छाइयों के पोषण, कुरीतियों के निर्मूलन, उन्नति के सोपान पर अग्रसर होने का भाव हो ।

खुद जीओ सब को जीने दो, यही मंत्र अपनाना है ।

एक बार एक इंजन पटरियों पर अंधाधुंध धुँआ छोड़ता हुआ आगे बढ़ता जा रहा था । उसके ड्राइवर से पूछा गया कि यह इतना धुँआ क्यों छोड़ रहा है ? ड्राइवर ने तीव्र आवाज में प्रत्युत्तर दिया — जीवन की प्रगति एवं उसके परिष्कार के लिए विकारों का बहिष्कार परमावश्यक है । यदि हमें अपने विकारों का बहिष्कार करना है तो उसके लिए सकारात्मक सोच के साथ सक्रिय होना होगा । वरना सरोवर में जमी काई की भाँति हमारी हालत हो जाएगी । सरोवर का पानी

काई से आच्छादित था। एक व्यक्ति ने काई से पूछा — तुम्हारे आधार से जीवित रहने वाली इस काई ने तुम पर अधिकार कैसे जमा लिया है ? सरोवर ने प्रत्युत्तर दिया — मेरी निष्क्रियता ने ही मुझे परतंत्र बना दिया है।

इसके लिए हमें अभिमान गति का त्याग करके विनम्र, सहज, सरल गति का बनना होगा क्योंकि सरल गति के बिना सिद्ध गति नहीं होती है। बाण सीधा होता है, इसलिए वह अपने लक्ष्य को बेध देता है किन्तु धनुष टेढ़ा-मेढ़ा है इसलिए वह अपने स्थान पर ही पड़ा रहता है। विकारों के टेढ़ेपन का त्याग करने पर ही विचारों की निर्मलता का अनुभव होता है।

आज हम देखते हैं कि शिक्षा का अर्थ और उद्देश्य बिल्कुल बदल गया है। हमारे चिंतन का विषय एक अच्छे नागरिक के रूप में होना चाहिए। जबकि आज का शिक्षित कहा जाने वाला समाज केवल साक्षरता को ही शिक्षा मानता है। वस्तुतः यह उचित नहीं है। आज भी हम अनेक ऐसे व्यक्तियों को देखते हैं जिन्होंने कभी स्कूल में क्रदम भी नहीं रखा किन्तु उनकी सूक्ष्म, पैनी दृष्टि में अनेक समस्याओं तक पहुँचने एवं समाधान करने की क्षमता है। जो उन्हें सैकड़ों साक्षर व्यक्तियों से भी बेहतर साबित करती है। मात्र पुस्तकें पढ़ लेने से शिक्षा का उद्देश्य पूरा नहीं होता क्योंकि कोरी अक्षर-शिक्षा जीवन का विकास नहीं कर सकती।

। ऐसा हुआ, ड्यूटी के दौरान एक टिकट चैकर ने अपने ग्रामीण पिता को बिना टिकट पाया। अफसरों से प्रशंसा पाने के लिए, उसने सभी के सामने पिता को भला-बुरा कह, नैतिकता का पाठ पढ़ाते हुए नियमानुसार दंड सहित किराया वसूल लिया। मुख्यालय पहुँच कर उसने अपने निरीक्षक को बताया कि उसने कर्तव्यपालन में अपने पिता को भी नहीं छोड़ा। इंस्पेक्टर ने घटना लिखित में मांगी ताकि उच्च अधिकारियों से उसे पुरस्कृत करा सके। तीसरे दिन मुख्यालय से इंस्पेक्टर को निर्देश मिले कि उसे पुरस्कार पाने के लिए मुख्यालय भेजा जाए। टिकट चैकर दूसरे दिन वहाँ पहुँचा। उच्च अधिकारियों ने उसकी कर्तव्यपरायणता की सराहना करते हुए इनाम के रूप में उसे पचास रुपए प्रदान किए और एक बंद लिफाफा निरीक्षक के लिए दिया।

अगले दिन टिकट चैकर ने लिफाफा इंस्पेक्टर को सौंप दिया। लिफाफे

में मिले पत्र का आशय था — टिकट चैकर के कर्तव्य निर्वहन की सराहना तो की जाती है, किंतु रेल प्रशासन को ऐसे कर्मचारी की सेवाओं की ज़रूरत नहीं है, जो अपने पिता के प्रति भी अनुदार और अशिष्ट हो ! यदि वह स्वयं की जेब से किराया भर देता, तो बतौर कर्मचारी और पुत्र दोनों रूप में नैतिकता सिद्ध कर सकता था ।

✓ ऐसी नैतिक शिक्षा किस काम की जो माँ-बाप का आदर करना न सिखाए। शिक्षा जीवन का विवेक सीखने की कला है मात्र पुस्तकों का ढेर शिक्षा नहीं है। विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय जाना मात्र शिक्षा प्राप्त करना नहीं है। अपितु संसार के साथ, मानव मात्र और क्रिया कलापों के साथ तालमेल कैसे बैठे, कैसे समन्वय हो यह शिक्षा है। हमारे विचार, आचार और व्यवहार कैसे बेहतर बनें शिक्षा का मुख्य उद्देश्य यही होना चाहिए। उसके द्वारा मनुष्य अपने शरीर, मन, मस्तिष्क और विभिन्न इन्द्रियों का सदुपयोग करना सीख जाए। क्रिया हीन ज्ञान की कोई कीमत नहीं होती है — 'ज्ञानं भारः क्रिया बिना।' अर्थात् आचरण रहित ज्ञान मस्तिष्क का भार है। क्योंकि कोरा ज्ञान व्यक्ति को अभिमानी बना देता है। जिसके कारण उसका ही अभिमान उसके आचरण की पूर्णता में, ज्ञान की पूर्णता में बाधक बन जाता है।

संगीताचार्य के पास एक आदमी संगीत में निपुणता प्राप्त करने की इच्छा से आया और उनसे बोला, आप संगीत के महान आचार्य हैं और संगीत कला प्राप्त करने में मेरी गहरी रुचि है। इसलिए आप से निवेदन है कि आप मुझे संगीत की शिक्षा प्रदान करने की कृपा करें। संगीताचार्य ने कहा — जब तुम्हारी इतनी उत्कृष्ट इच्छा है मुझसे संगीत सीखने की, तो मेरे घर आ जाओ, मैं सिखा दूँगा। उस आदमी ने आचार्य से पूछा कि इस कार्य के बदले उसे क्या सेवा करनी होगी। आचार्य ने कहा कि कोई खास नहीं मात्र सौ स्वर्ण मुद्राएँ देनी होगी।

सौ स्वर्ण मुद्राएँ हैं तो बहुत ज्यादा और मुझे संगीत का थोड़ा बहुत ज्ञान भी है, पर ठीक है मैं सौ स्वर्ण मुद्राएँ आपकी सेवा में प्रस्तुत कर दूँगा। उस आदमी ने कहा। इस बात पर संगीताचार्य ने कहा — यदि तुम्हें पहले से संगीत का थोड़ा-बहुत ज्ञान है तब तो तुम्हें दो सौ स्वर्ण मुद्राएँ देनी होगी। जिज्ञासु ने

हैरानी से पूछा — आचार्य जी, यह बात तो हिसाब-किताब के अनुकूल नहीं हैं। मेरी समझ से भी एकदम परे है। काम कम होने पर क्रीमत ज्यादा ? आचार्य ने उत्तर दिया — काम कम कहाँ है ? पहले तुमने जो सीखा है उसे मिटाना, उसे भूलाना होगा तब फिर नए सिरे से सीखना प्रारंभ करना पड़ेगा। क्योंकि पहले से भरे हुए पात्र में कुछ भी और डालना असंभव है।

वह ज्ञान वास्तविक ज्ञान नहीं है जो आचरण में नहीं उतरा हो। ज्ञान का अर्थ है किसी वस्तु के आन्तरिक एवं बाह्य स्वरूप को जानकर तदनुकूल आचरण करना। यदि व्यक्ति अपने ज्ञान का जीवन में उपयोग नहीं कर सकता अथवा तदनुकूल आचरण नहीं करता है तो वह ज्ञान विकृत ज्ञान है, अधूरा ज्ञान है। मात्र पुस्तकीय ज्ञान ज्ञान नहीं है। वह तो हृदय में बैठना चाहिए, आत्मा में प्रविष्ट होना चाहिए। जहाँ ज्ञान हृदय में समाविष्ट नहीं होता है, ज्ञानेन्द्रियाँ-कमेन्द्रियाँ उस ज्ञान के विरुद्ध काम करती हैं वह ज्ञान वास्तव में अज्ञान की भूमिका वाला है, अविद्या है। वह मात्र आजीविका का साधन है। स्वार्थ की आदतों के चलते आज आदमी आदमी का ही घातक बन गया है। उसमें इंसान के साथ इंसानियत की भावना की बजाय अर्थ की भावना प्रधान हो गई है। गिरधर गोपाल गोस्वामी ने आदमी पर ठीक ही लिखा है —

धीरे-धीरे आदमी को जानता है आदमी।
अपने मतलब के मुताबिक,
धीरे-धीरे आदमी को मानता है आदमी।

बात फूलों की शुरू कर,
फिर जड़ों से, धीरे-धीरे
आदमी को काटता है आदमी ॥

हम क्रदम चलते हुए को,
नींद की गोली खिलाकर,
धीरे-धीरे आदमी को लांघता है आदमी ॥

दोस्ती के आईने से, जब निकल जाता है, मतलब
धीरे-धीरे आदमी को तोड़ता है आदमी ॥

तीरों तलवारों से ही नहीं,
प्यार से भी, धीरे-धीरे
आदमी को मारता है आदमी ॥

धीरे-धीरे आदमी को जानता है आदमी।

जब भारतीय सभ्यता पूर्णरूप से उन्नत थी। तब हमारी शिक्षा प्रणाली पूर्णरूपेण उन्नत थी। विद्यार्थी प्रकृति की रमणीय स्थली में, आश्रमों में तक्षशिला, नालन्दा जैसे शिक्षा केन्द्रों पर श्रम पूर्ण जीवन व्यतीत करते हुए शिक्षा के मर्म और संस्कार को जीवन में उतारते थे। उनमें शालीनता, ज्ञान प्राप्ति की तीव्र अभिलाषा, अनुशासन, गुरुओं के प्रति सम्मान का भाव, देश-प्रेम जैसे आदर्श भाव थे। हमें देखना है कि हमारा विकास सद्प्रवृत्तियों की ओर है या दुष्प्रवृत्तियों की ओर।

एक देश के प्रमुख अस्पताल में मरीजों को मुख्य डॉक्टर के आने का इंतजार था। नर्स, कंपाउंडर आदि बेंचों पर शांति से बैठे थे, लेकिन लंबे कद का एक आदमी लंबा चौगा पहने, चहलकदमी करता हुआ प्रत्येक स्थान और वस्तु को गहराई से निरीक्षण कर रहा था। तभी अपनी ओर आते बड़े डॉक्टर को देखकर वह व्यक्ति ठिठका। डॉक्टर ने पूछा, 'ए मिस्टर, कौन हो तुम? यहाँ क्या कर रहे हो?' वह बोला, 'डॉक्टर, मेरे पिता बहुत बीमार हैं।' इस पर डॉक्टर बोला, 'बीमार हैं तो उन्हें यहाँ भर्ती कराओ।' वे बहुत कमजोर हैं। उन्हें यहाँ लाना संभव नहीं है। आप चलिए डॉक्टर, 'उस व्यक्ति ने आदरपूर्वक कहा।' लेकिन डॉक्टर ने उसे झिड़क दिया, 'क्या बेहूदगी है? मैं तुम्हारे घर कैसे जा सकता हूँ?' 'भले ही रोगी मर जाए, फिर भी आप नहीं जा सकते?' वह व्यक्ति बोला। डॉक्टर ने उसे डांटते हुए कहा 'ज्यादा बोलने की ज़रूरत नहीं है। तुम्हें मालूम नहीं कि तुम किससे बात कर रहे हो। चीफ सिविल सर्जन से इस तरह की बात की जाती है?' यह सुनकर वह व्यक्ति तिलमिलाते हुए बोला — 'मैंने अभी तक तो बहुत शराफत बरती है। तुम भी नहीं जानते कि तुम किससे बात कर रहे हो।' अब डॉक्टर का पारा चढ़ गया। उसने अस्पताल के वॉर्ड अटेंडेंट को बुलाकर कहा — 'इस पागल को पागलखाने भिजवा दो।' जैसे ही अटेंडेंट आगे बढ़ा, उस लंबे व्यक्ति ने अपना चोगा उतार फेंका। डॉक्टर ने देखा, सामने कोई साधारण व्यक्ति नहीं बल्कि खुद राष्ट्रपति खड़े थे। अब तो डॉक्टर भी सकपका गया। देश के राष्ट्रपति ने आदेश दिया — 'डॉक्टर, अब तुम्हारे लिए इस देश में कोई जगह नहीं है। मैं एक अस्पताल का नहीं, पूरे देश का अनुशासित सेनापति और कर्तव्यनिष्ठ

अधिकारी हूँ। जो लोग अपना कर्तव्य निभाना नहीं जानते, उन्हें इस देश में रहने का कोई हक नहीं।' राष्ट्रपति के आदेश पर तत्काल अमल हुआ। राष्ट्र सेवा प्रत्येक नागरिक का सर्वोच्च कर्तव्य है।

आज हमारी शिक्षा प्रणाली दूषित हो रही है। संस्कार प्रायः समाप्त हो रहे हैं, सभ्यता से हम भटक रहे हैं। एक जमाना था, जब एकलव्य अपने गुरु द्रोणाचार्य को अंगूठा काटकर देते थे। आज अंगूठा दिखाने का जमाना आ गया है। विद्यालयों में भी हिंसा और आतंक का प्रवेश हो गया है। अभी गुड़गाँव में 8वीं कक्षा के छात्र ने अपने मित्र छात्र से नराज़गी होने पर गोली मारकर हत्या कर दी। यह सब शिक्षा की गिरावट के कारण है। ज़रा-सी इच्छा पूर्ति होती नहीं है तो उसके कारणों का, समस्याओं का समाधान तो हम करते नहीं हैं और फिर चाहे विद्यार्थी हो या शिक्षक हड़ताल पर उतर आते हैं। विद्यार्थियों के विचार तो इतने धूमिल हो गए हैं कि हड़ताल करना, बसों जलाना, तोड़-फोड़ करना, सरकारी सम्पत्ति को नष्ट करना गौरव की संस्कृति बन रहा है। जबकि यह अनर्थों की शृंखला है। हम हड़ताल पर जाकर यह समझते हैं कि हम राजनेताओं से मिल रहे हैं, अख़बार में मेरा नाम आ रहा है, फोटो आ रही है लोग हमें पहचान लेंगे। इससे हम प्रसन्न होते हैं। हमने कभी यह नहीं सोचा कि सरकार हमसे अलग संस्था नहीं है, वहाँ का नुकसान हमारा नुकसान है। हमें यदि प्रसिद्धि प्राप्त करनी है, अख़बार में नाम एवं फोटो देना है तो अच्छा काम करो। इससे संस्कारों की रक्षा भी होगी।

जापान में कार्य दिवस पर हड़ताल नहीं होती है। यदि किसी को हड़ताल करनी है तो छुट्टी के दिन करते हैं। वह भी प्रतीकात्मक रूप में। वे तोड़फोड़, आगजनी नहीं करते, अपितु हाथ पर, मस्तिष्क पर काली पट्टी बाँध ली मौन जुलूस निकाल दिया, तख्ती पर अपनी समस्या लिख ली। आप कहेंगे कि छुट्टी क्यों बिगाड़े। वहाँ की व्यवस्था यह है कि कार्य को क्यों बन्द करें। किसी भी प्रकार की सम्पत्ति को क्यों नुकसान पहुँचायें। उसी प्रकार हमें भी अपनी समस्याओं को शांति पूर्ण तरीके से अवगत कराना चाहिये। पढ़ाई छोड़कर, कक्षाओं से भागकर, तोड़फोड़ प्रदर्शन करते हैं तो इसमें हमारा ही नुकसान है। आप अभी युवा हैं, विद्यार्थी हैं हमें दिशाहीन नहीं होना है। अपनी मंज़िल, अपने उद्देश्य से नहीं भटकना है। कौए की भाँति चंचल मन रखने वाले विद्यार्थी कभी

भी बुद्धिमान नहीं हो सकते हैं।

प्राचीन गुरुकुल की यह प्रणाली रही है कि विद्यार्थी अध्ययन की पूर्णता के बिना किसी भी प्रकार की राजनैतिक गतिविधियों में भाग नहीं लेते थे। शालीनता रखते थे। एकनिष्ठ होकर विद्या प्राप्त करते थे, उसमें निपुणता प्राप्त करते थे। युवावस्था में अध्ययन की समाप्ति के पश्चात् देश, समाज, माता-पिता परिवार के प्रति कर्तव्य का पालन करते थे।

आज भी इसी परम्परा को निभाने की आवश्यकता है। विद्यार्थियों को विद्याध्ययन की समाप्ति तक किसी भी प्रकार के राजनैतिक विवादों या अन्य विवाद के क्षेत्रों में भाग नहीं लेना चाहिए। विद्याध्ययन को ही एक मात्र लक्ष्य मानकर संस्कृति संरक्षण के साथ अपना सर्वांगीण विकास करना चाहिए। शिक्षा स्वयं कोई ध्येय नहीं है, वह जीवन के ध्येय की पूर्ति का साधन मात्र है। अगर पर्याप्त शिक्षा प्राप्त करके भी कोई उसे व्यवहार में नहीं ला सकता तो वह अधूरी है। शिक्षा का जीवन और जीवन की समस्याओं से घनिष्ठ संबंध है। जो जीवन हम व्यतीत कर रहे हैं उसे बेहतर-से-बेहतर बनाने की ओर अग्रसर करने की साधना ही शिक्षा है। पुस्तकों में मात्र अक्षर और भाषा मिलती है, पर उसका अर्थ सृष्टि में रहता है।

शिक्षा का अत्यधिक महत्त्व है। परन्तु दीक्षित हुए बिना शिक्षा के द्वारा घोर अनर्थ हो जाता है। अशिक्षित मनुष्य के द्वारा समाज को उतनी हानि नहीं होती जितनी दीक्षारहित शिक्षित मनुष्य से होती है। हमारे प्राचीन आचार्य अपने शिष्यों को शिक्षा देने के साथ दीक्षा देना कभी नहीं भूलते थे।

एक राजा ने अपने राजकुमार को किसी आचार्य के पास शिक्षा प्राप्त करने भेजा। जब राजकुमार की शिक्षा के समाप्त होने का समय आया तो महाराजा स्वयं उसे लेने के लिए गुरु के आश्रम में उपस्थित हुए।

राजा ने आचार्य से पूछा— भगवन्! राजकुमार की शिक्षा समाप्त हो गई ?

गुरु ने उत्तर दिया — राजन्! इसकी शिक्षा पूरी हो गई है, सिर्फ दीक्षा का एक और सबक देना बाकी है। वह मैं अभी दे देता हूँ।

इतना कहकर गुरुजी ने राजकुमार को बुलाया और पास में रखे हुए कोड़े से राजकुमार की पीठ पर तीन-चार प्रहार किए। तत्पश्चात् कहा — वत्स

जाओ ! तुम्हारा कल्याण हो ।

राजा गुरु के इस कार्य से अत्यधिक चकित हुए । उन्होंने नम्रतापूर्वक पूछा अपराध क्षमा हो गुरुदेव ! राजकुमार की दीक्षा का यह पाठ मुझे समझ में नहीं आया ।

गुरु ने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए कहा — अरे भाई ! इसे शासक बनना है । अपनी सत्ता और शिक्षा के मद में अगर यह अन्याय, अत्याचार और मारपीट करने पर उतारू हो जाएगा तो आज का यह सबक इसे याद दिला देगा कि मार की तकलीफ कैसी होती है । बिना दर्द सहे यह पराए दुःख दर्द को कैसे समझ सकेगा ।

कितना सुंदर उदाहरण है हमारे मनीषियों के सामने भूत, भविष्य, हस्त-कमलवत् के सामने थे । उनकी दिव्य दृष्टि हर जगह पहुँचती थी परन्तु आज यह विडंबना है यदि शिक्षक बच्चे को दो चाँट लगा दे तो कई अभिभावक स्कूल में आकर आक्रोश व्यक्त करते हैं । परिणामस्वरूप शिक्षक भी अपने उद्देश्य को पूर्ण नहीं कर रहे हैं । उनका उद्देश्य विद्यार्थी को आलोक युक्त श्रेष्ठ ज्ञान देना होना चाहिए तभी वह शिक्षक सच्चा गुरु बन पाता है । जो छात्र के सुंदर व्यक्तित्व निर्माण में अपना व्यक्तित्व विलीन कर दे वही गुरु, वही गुरुपद का अधिकारी कहला सकता है ।)

शिक्षा सामर्थ्य है और दीक्षा प्रकाश है । अगर व्यक्ति अपने सामर्थ्य का उपयोग अंधेरे में ढेला फेंकने के समान करता है तो निश्चय ही वह अपने विनाश को निमंत्रण देता है । उसका यह संकल्प होना चाहिए कि वह किसी भी परिस्थिति में अपने बल का दुरुपयोग नहीं करेगा । उससे कर्तव्य भावना को बल मिलता है । करणीय, अकरणीय का विवेक जाग्रत होता है यही दीक्षा की महिमा है । सामर्थ्य एवं विवेक विरोधी कार्य नहीं करने का निर्णय कर्तव्य परायणता के लिए अनिवार्य है ।

एक व्यक्ति ने मुझे बताया मैं सुबह-सुबह नहा-धोकर उत्साह से भरा हुआ अपने नए स्कूल में पढ़ाने के लिए पहुँचा । घंटा बजते ही मैं दसवीं कक्षा में गया । सभी बच्चों ने मेरा अभिवादन किया ।

सबसे पहले परिचय का दौर चला । तत्पश्चात् पीछे की पंक्ति में बैठे हुए

दो-तीन छात्रों ने मेरे सामने सिगरेट और खैनी की पेश की। मैंने उन्हें डांटा कि यह सब क्या है? उन्होंने बताया कि हमारे गुरुजी तो हमसे सिगरेट मंगाकर पीते हैं।

मुझे अपने शिक्षक होने पर शर्म आई। यदि शिक्षक वर्ग ही विद्या के मंदिर में नैतिकता की सीमा लांघ जाएगा, तो इस भावी पीढ़ी का क्या होगा? हम बच्चों के सामने नैतिकता का उदाहरण नहीं बनेंगे, तो स्वस्थ भविष्य का निर्माण कैसे होगा?

हम सिमट रहे हैं, संकुचित हो रहे हैं। शिक्षा के मूल्यों का हास हो रहा है, चारित्रिक पतन हो रहा है। रावण ने अपने अवगुण के कारण सीता का हरण किया था। पचास गुणों में भी यह एक बहुत बड़ा अवगुण था। किन्तु उन्होंने एक नियम लिया था जब तक सीता स्वीकृति नहीं देगी तब तक मैं उसकी देह का स्पर्श नहीं करूँगा। सीता ने स्वीकृति नहीं दी इसलिए रावण ने स्पर्श भी नहीं किया। ऐसा कोई भी शास्त्र उपलब्ध नहीं है जिसमें रावण द्वारा सीता का उपभोग किए जाने का उल्लेख है। इतनी निष्ठा थी रावण को अपने नियम के प्रति। वह दम्भी था, पर बलात्कारी नहीं।

आज शिक्षा प्रणाली के मूल्यों में गिरावट आने के कारण चारित्रिक मूल्यों का तीव्रता से पतन हो रहा है और तो और नारी अस्मिता प्रश्नों के दायरे में है? अबलाएँ लूटी जा रही हैं। बलात्कार की घटनाओं में दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। कमजोर आदमी मात खा रहे हैं। योग्य व्यक्तियों को आगे नहीं बढ़ने दिया जा रहा है। प्रतिभाओं को दबाया जा रहा है। स्वस्थ समाज की संरचना के लिए हमें विषमताओं को जड़ मूल से दूर करना है। मतभेद ठीक है पर मन भेद नहीं होना चाहिए। हम अपने स्तर से ऊपर उठें।

| आज की शिक्षा प्रणाली में मनुष्य की सोच बदलती जा रही है। वह निर्माणकारी शिक्षा से दूर रहकर जहाँ स्वार्थ की पूर्ति नहीं होती वह विध्वंस करने के लिए तैयार हो जाता है। विध्वंसात्मक प्रवृत्ति के विद्यार्थी यह भली-भाँति नहीं समझ पाते कि विध्वंस सरल एवं सहज है। निर्माण कठिन एवं श्रमसाध्य है। बिगाड़ना सरल है, पर बनाना मुश्किल है। हम हर हालत में तोड़फोड़ से दूर रहें।

सितार के तारों को तोड़ने की सामर्थ्य सभी में है, पर उन तारों को अपनी कोमल अंगुलियों से बजाने की, छेड़ने की सामर्थ्य सब में नहीं है। उनमें मधुर संगीत उत्पन्न करने, उन्हें बजाने हेतु साधना की आवश्यकता है, निरंतर अभ्यास की ज़रूरत है पर तारों को तोड़ने हेतु किसी अभ्यास की आवश्यकता नहीं होती है।

एक बहुत सुन्दर इमारत के मालिक ने अपने कारीगरों से पूछा क्या तुम इसे तोड़ सकते हो ? यदि हाँ तो कितना समय लगेगा ? कारीगरों ने कहा दो दिन में पूरी इमारत गिरा देंगे। फिर उसी व्यक्ति ने पूछा क्या इस इमारत को गिराकर आप सुन्दर इमारत दो दिनों में खड़ी कर सकते हो ? कारीगर ने कहा — साहब ! खुदाई करने वाले अलग, नक्शा बनाने वाले अलग, बिल्डिंग बनाने वाले अलग, मारबल लगाने वाले अलग कारीगर होंगे। तभी सुन्दर इमारत खड़ी हो पाएगी।

हम तोड़ना नहीं, जोड़ना सीखें और ऐसी शिक्षा ग्रहण करें जो हमारे सर्वांगीण विकास में सहायक हो।

शिक्षा से हमारे चरित्र का विकास होना चाहिए। हमारे सर को जो ऊपर उठाए वह शिक्षा है। वही शिक्षा हमारे लिए सर्वांगीण वरदान सिद्ध होगी। आज की शिक्षा पेटि भरने, डिग्री प्राप्त करके नौकरी हासिल करने का सामान्य माध्यम है। एम.ए., पी.एच.डी. के विद्यार्थियों को देखें तो न तो उनकी सही रूप में अभिव्यक्ति है, न ही निर्णय की क्षमता है, न ही जीवन के प्रति कोई सकारात्मक दृष्टिकोण है। पुस्तकों का भारी भरकम बोझ इस क्रम बढता जा रहा है मानों कोई पार्सल पैक हो। ठोस ज्ञान समाप्त प्रायः हो रहा है। रट-रट कर दिमाग को दिमाग नहीं एक फ्लोपी या सीडी बनाया जा रहा है। अगली कक्षा में जाने वाले पुराने अध्ययन को भूल जाते हैं। कृपया केवल तोते की तरह रटना छोड़ें। सही सोच, सही समझ, सही चिंतन विकसित करें तभी हम आगे बढ़ सकेंगे।

ऐसा हुआ, एक व्यक्ति कुछ दिन पहले जोर-जोर से रो रहा था। उसके पास बोरियाँ भर के डिग्रीयाँ थी। मानो वह व्यक्ति पढ़ाकू हो। उसकी कारुण्य दशा देखकर मैंने पूछा आपके साथ क्या अनहोनी हो गई जो आप रो रहे हैं।

उसने बताया, मेरी बीबी घर के नौकर के साथ भाग गई है और मैं उसका कारण समझ नहीं पाया आखिर ऐसा क्यों हुआ ? मुझे यह सुनकर जोर की हँसी आई कि जो व्यक्ति इसका कारण भी ढूँढ़ नहीं पा रहा है उसके डिग्रीयों का क्या अर्थ ? कहीं हमारी शिक्षा भी तो ऐसी नहीं है ।

हमें शिक्षा ग्रहण करते समय यह चिंतन करना है कि हमारी जिंदगी का उद्देश्य क्या है ? उसके आधार क्या होंगे ? हम भविष्य को कैसे उज्ज्वल बनाएँगे ? जीवन में परिवर्तन के आधार ढूँढ़ते जाएँगे तभी शिक्षा हमारे लिए सार्थक हो पाएगी ।

कहने का अभिप्राय यह है कि शिक्षा तभी तक सदृशिक्षा कहला सकती है और सार्थक बन सकती है जब हम उसे आचरण में उतारने का प्रयत्न करें । व्यक्ति अपने ज्ञान को चिंतन, मनन, संयम और साधना से व्यावहारिक तथा आत्मिक उन्नति में सहायक बना सकता है । जिस व्यक्ति का ज्ञान मात्र तर्क-वितर्क, वाद-विवाद के लिए होता है वह उसके उत्थान में बाधक होता है । इसके विपरीत जो व्यक्ति मिथ्याचार, दुराचार, पापाचार को नष्ट करके आध्यात्मिक बल को बढ़ाता है । वह जीवन-विकास के सारे द्वार खोल लेता है ।

(जिस प्रकार कोई व्यक्ति पानी में गोते खाए बिना तैराक नहीं बन सकता उसी प्रकार शिक्षा को आचरण में नहीं लाए बिना मानव अपने जीवन का लेश मात्र भी भला नहीं कर सकता है । शिक्षा परिणाम तभी देती है जब दीक्षा उसके साथ जुड़ी हो ।

कहते हैं एक बार सीता ने राम से कहा — ‘ भगवन् ! मेरे चरण आपसे ज्यादा सुंदर हैं, क्योंकि आपके श्याम हैं और मेरे गोरे हैं ।’ दोनों में संवाद छिड़ गया । इसी बीच वहाँ लक्ष्मण आ गए । लक्ष्मण ने पूछा — ‘ भैया ! आखिर बात क्या है ?’ राम ने पूरी बात बताई और कहा — ‘तू हमारा न्यायाधीश है । जल्दी से बता और निर्णय दे कि दोनों में से किसके चरण सुंदर हैं ?’ लक्ष्मण यह सुनकर धर्म संकट में पड़ गए । सोचने लगे — ‘ भैया-भाभी के झगड़े में मेरा क्या काम !’ राम बोले — ‘ नहीं, निर्णय तुम्हें ही करना है ।’ लक्ष्मण परेशान कि यदि प्रभु के चरण सुंदर बताता हूँ तो सीता मैया को कष्ट होगा और यदि सीता

मैया के बताता हूँ, तो प्रभु को दुःख होगा। धर्मसंकट के इन क्षणों में लक्ष्मण ने जैन धर्म के मौलिक सिद्धांत अनेकांत-स्याद्वाद का सहारा लिया और समाधान खोजने को तत्पर हुए। लक्ष्मण ने राम और सीता का एक-एक चरण अपने हाथ में लिया और गौर से देखा और बोले — ‘सीता मैया के चरण सुंदर हैं’ यह सुनकर सीता बड़ी प्रसन्न हुई। बोली — ‘देखो प्रभु! मैंने तो पहले ही कहा था कि मेरे चरण ज्यादा सुंदर हैं।’ लक्ष्मण बोले — ‘माँ! पूरी बात तो सुनो, आप तो आधी-अधूरी बात सुनकर ही नाच उठी।’ लक्ष्मण कहते हैं — ‘माँ! क्या आपको पता है कि आपके चरण सुंदर क्यों हैं?’ सीता बोली — ‘नहीं, मुझे तो नहीं पता।’ लक्ष्मण बोले, ‘माँ! आपके चरण इसलिए सुंदर हैं, क्योंकि आप प्रभु के चरणों का अनुगमन करती हैं।’ यह सुनकर राम प्रसन्न हो गए। बोले — ‘देखा, मैंने तो पहले ही कहा था कि मेरे चरण सुंदर हैं।’ तभी लक्ष्मण बोले, ‘भगवन्! आप भी आधी-अधूरी बात सुनकर प्रसन्न हो गए।’

लक्ष्मण ने राम से पूछा — ‘भगवन्! आपको मालूम है, आपके चरण सुंदर क्यों हैं?’ राम ने कहा, ‘नहीं, मुझे तो नहीं मालूम।’ लक्ष्मण ने कहा — ‘प्रभु! आपके चरण नहीं, अपितु आपका आचरण सुंदर है और आपका आचरण सुंदर है इसलिए आपके चरण सुंदर हैं।’

हम शिक्षा को प्राप्त करके उसे जीवन के साथ जोड़ने का प्रयास करें तभी हमारा आचरण पवित्र होगा जिससे सुंदर जीवन का निर्माण होगा। सुंदर जीवन अपने आप में देश की सबसे बड़ी सेवा है और ईश्वर की सर्वोपरि पूजा है।)



व्यसन + फैशन = टेंशन

सदा याद रखें कि बुराई के त्याग का संकल्प
वस्तुओं को भेंट करने से अधिक श्रेष्ठ है।

सुंदर वाक्य है 'दुल्लहे खलु माणसे भवे' अर्थात् मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। सभी शास्त्रों एवं धर्मगुरुओं का एक ही कथन है दुर्लभ मनुष्य जीवन से उत्तम धर्म का पालन करो, श्रेष्ठ आचरण करो। जीवन कल्याण की श्रेष्ठ बातें बार-बार सुनने के बावजूद भी मनुष्य अज्ञान एवं आसाक्तिवश शरीर का पोषण करने में उसे सजाने-संवारने में अपना समय व्यतीत करता है, पर आत्मा को पुष्ट करना भूल जाता है। आज का मनुष्य जिस ओर तीव्रता से अग्रसर हो रहा है वह है व्यसन और फैशन। ये दोनों मानव जीवन के महारोग हैं। मनुष्य एक बार यदि इन्हें पकड़ लेता है तो छोड़ता नहीं है। युवती फैशन में डूब रही है और युवक व्यसन में। वह इन दोनों महारोगों में मात्र गुण ही देखता है। इनके प्रति दोष दृष्टि बन्द हो जाती है। रोग दृष्टि ऐसी है जो कि इससे होने वाले अहित का चिंतन करने नहीं देती है।

व्यसन का अर्थ है बुरी आदत। 'व्यस्यति पुरुषं श्रेयसः इति-व्यसनम्' व्यक्ति को कल्याण मार्ग से विचलित करने वाले कार्य व्यसन हैं। मनुष्य

विषय-सुख की अभिलाषा से जिस अकरणीय कार्य को करता है वह व्यसन ही है। सामान्यतया जो मनुष्य को व्यस्त करे वह व्यसन है। सत्कार्यों में व्यस्त रहना सद्व्यसन और असत्कर्म में लगना कुव्यसन है। कुव्यसन पहले प्राणी को लुभाते हैं, मोहित करते हैं फिर उसके प्राणों तक का हरण कर लेते हैं।

जैसे अनाज में घुन लग जाता है तो वह उस अनाज को खोखला कर देते हैं उसी प्रकार व्यसन मनुष्य के शरीर को चूसकर उसको निस्तेज और खोखला कर देते हैं। यह एक चेपी रोग है जो पहले किसी मित्र या साथ में रहने वाले के कुसंग से लगता है फिर वह धीरे-धीरे सबको अपने ग्रास में ले लेता है। इससे गुणों के साथ व्रत, तप, तेज नष्ट हो जाते हैं। व्यसन का वर्णन करते हुए नीतिकारों ने कहा है —

दुःखानि तेज जन्यन्ते, जलानीवाम्बु वाहिना ।
व्रतानि तेन धूयन्ते, रजांसि भरुता यथा ॥

जैसे जल के स्रोत से जल प्राप्त होता है वैसे ही व्यसनों से दुःख प्राप्त होते हैं। जैसे वायु से धूलि उड़ जाती है वैसे ही व्यसनों से व्रत धूमिल हो जाते हैं।

व्यसन में डूबने पर व्यक्ति उससे उभरने की तो कोशिश करता नहीं है। अपितु जो उसे व्यसन मुक्त होने का सन्देश देता है उसके समक्ष कुतर्क करता है :

ऐसा हुआ, ईसा मसीह का एक भक्त था। जो रोज गिरिजाघर में जाकर प्रार्थना करता था। दया-भाव से युक्त होने के कारण गरीबों की बहुत सेवा करता था। लेकिन उसमें शराब पीने की बहुत बुरी आदत थी। उसके अस्वस्थ रहने पर उसे डाक्टरों ने शराब पीने से मना किया परन्तु अपनी आदत के आगे मजबूर था।

एक बार वह अपने फैमिली डाक्टर के साथ होटल में गया। वहाँ भोजन लेने के पश्चात् उसने शराब मंगायी और पीनी शुरू कर दी। डाक्टर ने कहा यदि आप अपना भला चाहते हैं तो इसे छोड़ दें यह आपकी जानी दुश्मन है।

डॉक्टर साहब की बात सुनकर व्यक्ति ने गंभीर होकर कहा — डाक्टर साहब! आपका कथन बिल्कुल सही है। मुझे यह मालूम है इसे पीने से मेरी बीमारी बढ़ रही है और उम्र घट रही है, पर मैं भी क्या करूँ। मैं मजबूर हूँ। मेरे

जीवन सर्वस्व, आराध्यदेव महाप्रभु ईशु ने कहा — ‘दुश्मन के साथ भी दोस्ती रखो।’ आप ही बताइए इस जाने दुश्मन शराब का मैं कैसे त्याग कर दूँ। इससे कैसे शत्रुता रखूँ। यदि मैं इसके साथ मित्रता नहीं रखूँगा तो प्रभु के वचनों का उल्लंघन होगा। इसलिए मैं इसे छोड़ नहीं सकता।

मनुष्य की ऐसी कुतर्क भरी धर्म की बातें करना दुर्भाग्य है। जब हमारा अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं रहता है, हम व्यसन, वासना के गुलाम होते हैं, तो इसी प्रकार की स्थिति होती है। यदि हम स्वतः किसी बुराई का त्याग नहीं कर सकते हैं तो हमें प्रेरणा प्राप्त करके स्व विवेक से बुराई का त्याग अवश्य करना चाहिए। ऐसे भी अनेक अवसर हुए हैं जिसमें कइयों ने बुराई का त्याग करके स्व कल्याण किया है।

एक धनाढ्य व्यक्ति की शादी हुई। उसने अपने परिवार की प्रथा के अनुसार पत्नी को शीशे में जड़ा हुआ एक पत्र भेंट स्वरूप भेजा। नवविवाहिता ने जैसे ही वह पत्र पढ़ा वह हर्ष से नाच उठी। सब अपने मन में सोचने लगे ऐसा क्या उपहार मिला है जिसको प्राप्त कर यह इतनी खुश हो रही है कि जितनी तो अपनी शादी के समय पर भी खुश नहीं थी। सभी ने दिखाने को कहा पहले तो उसने यह गुप्त रखने को कहा। फिर उसने कहा — मेरा जीवन आज धन्य हो गया है इससे बड़ा उपहार मेरे लिए कुछ भी नहीं है। मैं ही इसे पढ़ती हूँ उसने बताया इस पत्र में लिखा है कि —

‘मैं बहुत शराब पीता हूँ। सुहागरात के दिन भेंट रूप में मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जीवन की सबसे बड़ी बुराई शराब का आज से त्याग करता हूँ।’ सदा याद रखें बुराई के त्याग की भेंट वस्तुओं के भेंट करने से अधिक श्रेष्ठ है।

जुआ, मांस-भक्षण, सुरापान, वेश्यागमन, चोरी, शिकार और परस्त्री गमन ये सात व्यसन बर्बादी के कारण हैं। इन सात में से एक व्यसन का भी जो सेवन करता है वह सभी के उपहास का पात्र बनता है।

हर कोई ऐसे व्यक्तियों से अपना पिण्ड छुड़ाना चाहता है पत्नी ऐसे पति से, पुत्र ऐसे पिता से, ऐसे भाई या मित्र से नफ़रत करने लगते हैं क्योंकि यह सबकी तबाही का, परेशानी का, चिंता का, बदनामी का कारण बन जाता है। ऐसा हुआ एक शराबी ने अखबार पढ़ते हुए अपनी पत्नी से कहा : आज खबर

छपी है कि अपनी कॉलोनी में शराब की दुकान से जहरीली शराब पीने से बीस शराबी मर गए। पत्नी ने कहा : मैंने कितनी बार कहा है तुमसे, अपनी कॉलोनी की दुकान के अलावा शराब मत पिया करो लेकिन तुम हो कि सुनते ही नहीं। अब मौका गया न हाथ से।

ऐसे लोगों के दिमाक का दिवाला भी निकल जाता है एक आदमी को बढ़िया किस्म की शराब उपहार में मिली। वह बड़े उत्साह के साथ नाचता-कूदता घर जा रहा था। बोतल मिलने की खुशी में वह इतना मगन हो गया कि सामने से आती हुई मोटरसाइकिल वाला उसे टक्कर मार गया। वह उठा। सड़क पार कर रहा था कि उसे महसूस हुआ कि उसके पैर से कुछ गर्म-सी चीज बह रही है। वह भगवान से प्रार्थना करने लगा, 'हे भगवान, काश ये खून हो।' अगर इंसान चाहे तो अच्छी आदतों को अपनाकर प्रभु बन सकता है नहीं तो ये व्यसन उसे पशु बनाकर छोड़ देते हैं। एक व्यसनी ने पूछा — आदमी और जानवर में क्या अंतर है ? मैंने कहा — आदमी अगर शराब पी ले, तो जानवर बन जाता है, लेकिन जानवर को शराब पिलाओ, वह आदमी नहीं बन सकता।

अतएव दुर्लभ प्राप्य मानव जीवन को सफल एवं सार्थक बनाने के लिए व्यसनो से मुक्त रहना अत्यन्त आवश्यक है। व्यसन-मुक्त जीवन ही सार्थक है। ये व्यसन अपने साथ अन्य दुर्व्यसनो को भी ले आते हैं। गुटका, जर्दा, शराब, भांग, अफीम, चरस, गांजा आदि जितने भी नशीले पदार्थ हैं ये हमारे स्वास्थ्य पर इस प्रकार का आक्रमण करते हैं कि व्यक्ति इलाज कराते-कराते तंग आ जाते हैं। पहले इन वस्तुओं के भक्षण में फिर इनसे हुई बीमारियों के इलाज में पैसा पानी की तरह बहाते हैं, पर अपने खोये हुए समय, आनंद एवं स्वास्थ्य को पुनः प्राप्त नहीं कर सकते हैं। व्यसनो में पैसे का दुरुपयोग करते-करते व्यक्ति दरिद्र हो जाता है, स्वास्थ्य के अभाव में वह जीवन में परिश्रम नहीं कर पाता है फिर परिणामस्वरूप यहीं से शुरू होते हैं कलह, द्वेष, झगड़े, तनाव आदि। नशीली वस्तुओं का सेवन मनुष्य को गैर जिम्मेदार, आलसी, प्रमादी, धर्मध्यान के प्रति अरुचिवाला एवं असंयमी बना देता है।

व्यक्ति न केवल मानवता को वरन् देश हित को भी व्यसन के चलते तिलांजलि दे देता है। एक व्यक्ति ने कल बताया कि वह पिछले सोमवार को

बैंक में पैसे जमा करवाने गया था। सोमवार होने के कारण कैश काउंटर पर भीड़ थी। जब मेरी बारी आई, तो मैंने देखा कि कैशियर महोदय ने जेब से गुटखे का पैकेट निकाला और मुँह में डाल लिया। चंद सेकेंड बाद ही उन्होंने लाल पीक केबिन पर थूक दी। जब मैंने उन्हें मना किया, तो वे बोले, 'क्या यह तुम्हारा घर है?' उनकी बात से मुझे इतना दुःख नहीं हुआ जितना उनकी सोच पर। क्या यही हमारा कर्तव्य है, हमारी नैतिकता है? हम अपने घरों को स्वच्छ रखते हैं, पर सार्वजनिक सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाने में कोई कसर नहीं छोड़ते। यदि हम ही देश की सम्पत्ति के साथ ऐसे खिलवाड़ करेंगे, तो दूसरों को किस मुँह से मना करेंगे?

शास्त्रों में सात व्यसन बताए गए हैं, पर आज सात क्या अनगिनत व्यसन होते जा रहे हैं। नये-नये व्यसन घुसते जा रहे हैं जो व्यक्ति को अधःपतन की ओर ले जाते हैं। व्यसन कोई भी हो दुःख में डालने वाला है, श्रेय मार्ग से गिराने वाला है। इन्द्रियों एवं मन पर संयम नहीं रखने से व्यक्ति दुर्व्यसन के गर्त में गिरता जाता है।

बाढ़ का रूप धारण करती हुई नदी की तीव्र धारा जैसे किनारों को काट देती है वैसे ही व्यसन मानव जीवन के गुण, तेज, आत्मशक्ति के तट का हास कर देते हैं। इस कटाव से व्यक्ति का जीवन नीरस, तेजहीन एवं फीका हो जाता है। उसकी श्री एवं बुद्धि दोनों नष्ट होती है। विवेक एवं विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। मन की शांति और चेहरे की कांति दोनों नष्ट हो जाती है। आत्मा की स्वाभाविक ज्योति और निर्मलता आच्छादित हो जाती है।

आज का मानव आराधना को छोड़कर वासना और फैशन का गुलाम बनता जा रहा है कुछ हद तक बन चुका है। जब तक हम वासना, व्यसन, फैशन के मकड़जाल से मुक्त नहीं होंगे तब तक उपासना के क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकेंगे। इतिहास इस बात का साक्षी है कि व्यसन, फैशन ने अपने आकर्षण में जीवों को फँसाकर अनेक जीवों को विष पान कराकर उनके जीवन को बर्बाद किया है। फिर भी आश्चर्य है कि शक्ति संपन्न मानव इसके जाल से मुक्त होने का कोई पराक्रम क्यों नहीं करता है।

एक व्यक्ति को कल्ल के मुकदमे में सेशन न्यायालय से आजीवन

कारावास की सजा हो गई थी। आज उच्च न्यायालय ने उसकी अपील स्वीकारते हुए उसे कत्ल के आरोप से बरी कर दिया। वह खुशी से झूम उठा। उसने फोन पर अपने गैंग के सदस्यों और परिजनों को सूचना दी कि शाम तक वह घर पहुँच रहा है। पार्टी की तैयारी कर लें। बरी होने की खुशी में उसने जम कर शराब पी और टैक्सी कार से अपने गाँव की ओर चल पड़ा। रास्ते में वह कार की धीमी गति से बार-बार झुंझलाने लगा और अंत में टैक्सी चालक को एक भद्दी-सी गाली देते हुए उसे जबरदस्ती हटाकर खुद कार को तेज गति से लहराते हुए चलाने लगा। कुछ देर बाद ही वह कार पर नियंत्रण नहीं रख सका और कार सड़क किनारे एक पेड़ से टकरा कर उलट गई। सिर में भारी चोट के कारण वह मौके पर ही मर गया। शाम को उसके परिजन व मित्र, कुल क्ररीब सवा-डेढ़ सौ लोग, उसके घर पर मालाएँ लिए उसके स्वागतार्थ इंतजार में खड़े थे शाम को उसका माल्यार्पण तो हुआ लेकिन उसके शव पर।

ये व्यसन जन्म लेते हैं हमारे नेत्रों में, रहते हैं दिल में, बढ़ते हैं इन्द्रियों के संसर्ग से और मरते हैं उपासना के घर में। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे सामने है — रावण की आँख बिगड़ी, मन बिगड़ा, विचार बिगड़े, भाषा बिगड़ी, जीवन बिगड़ा और सम्पूर्ण परिवार देखते ही देखते समाप्त हो गया। यहाँ तक कि रावण का नाम भी बिगड़ गया। लोग अपनी संतान का नाम राम, कृष्ण, भरत आदि तो रखते हैं पर किसी ने अपने बच्चे का नाम आज तक रावण नहीं रखा है।

कई लोग कहते हैं महाराजश्री हमने पुण्य किया है तभी तो हमें धन-दौलत मिली है। हम इसका उपभोग करके सुख प्राप्त ही तो कर रहे हैं। वे यह नहीं जानते कि वह पुण्य किस काम का जो हमें व्यसनों में फँसाकर बर्बाद करे। पुण्य वही उपादेय है जिससे धर्म आदि में बुद्धि बनी रहे। जो हमें दुर्गति से बचावे।

एक साधु भोजन करने कहीं जा रहे थे। उन्होंने देखा एक शराब की दुकान पर कुछ व्यक्ति परस्पर अत्यन्त प्रेम एवं हर्ष के साथ शराब पी रहे थे। संन्यासी गुण ग्राहक व्यक्तित्व का धनी था उसके मन में विचार आया रे मन! प्रेम सीखना है तो इनसे सीख। इतना प्रेम तो मेरे भी मन में नहीं है। भोजन करने

के बाद वे वापिस लौटे तो देखा कि वे व्यक्ति आपस में मारपीट, गाली-गलौज कर रहे थे, फिर उन्होंने सोचा ऐसा प्रेम किस काम का जो स्व-पर को दुःख में डाल दे।

धन-वैभव का उपयोग, व्यसन, फैशन, विलासिता आदि में करना गलत है। धार्मिक प्रभावना, आत्म कल्याण, दीन दुःखी की सहायता के क्षेत्र धन-सदुपयोग के क्षेत्र हैं।

हम व्यसन में फँसकर तनाव, अशांति, दरिद्रता को तो बुलावा दे रहे हैं साथ ही असाध्य रोगों के जरिए मौत को भी बुलावा दे रहे हैं। इससे लोभी निर्दयी डॉक्टरों के घर भी भर रहे हैं तथा उनके विचारों को कुत्सित भी कर रहे हैं।

जटाशंकर सिगरेट, तम्बाकू, गुटखे का व्यसनी था। वह रास्ते में खोया हुआ जा रहा था। उसे तलब लगी। उसने जेब में हाथ डाला उसकी दोनों जेब खाली थी। उसने आस-पास नज़र दौड़ाई। एक सूटेड आदमी नज़र आया वह उसके पास जाने में पहले तो हिचकिचाया पर बाद में गया। जटाशंकर ने कहा — महाशय आपके पास गुटखा या बीड़ी है। उस व्यक्ति ने जेब में हाथ डालकर चार-पाँच गुटखे की पूड़ी और बीड़ी का बंडल थमाते हुए कहा लो ये खाते-पीते रहना। जटाशंकर आश्चर्य में पड़ गया। उसने कहा — महाशय! आप तो बहुत ही उदार हैं। आपकी मेरे से कोई जान-न-पहचान। फिर भी.....

उस व्यक्ति ने कहा मैं उदार नहीं हूँ। मैं पेशे से डॉक्टर हूँ और मेरे बेटे के दवाई की दुकान है। मैं मरीजों को बीड़ी, सिगरेट, गुटखे के नुकसान बताता थक गया। एक-एक मरीज पर आधे से एक घंटा देता तभी मरीज देख पाता था। इससे मेरा धंधा बिगड़ने लगा तथा मेरे पुत्र की दुकान पर बिक्री कम होने लगी। हमने सोचा व्यसन के चक्कर में फँसा आदमी नहीं संभल रहा है, तो हम क्यों न संभल कर अपना घर भरें। इसलिए गुटखा आदि बाँटता हूँ। प्रचार करता हूँ। जिससे मेरा अंधा अच्छी तरह से चले। यदि लोग इनका उपयोग नहीं करेंगे तो कैंसर नहीं होगा। कैंसर नहीं होगा तो मेरा और मेरे बच्चे का व्यापार बन्द हो जाएगा।

डॉक्टर के इस व्यंग्यबाण को वह व्यक्ति समझ गया और उसने गुटखे

की पुडिया तथा बीड़ी का बण्डल उसी डाक्टर के सामने नाली में डाल दिया ।

हम बार-बार डॉक्टर के समझाने पर भी, विज्ञापन देखकर, इनसे होने वाले नुकसान को प्रत्यक्ष में देखकर भी इनको छोड़ नहीं रहे हैं । हम स्वयं ही बीमारी के खरीददार हो रहे हैं । इसमें दोष किसी और का नहीं है, हमारा अपना है । बीमारियों के सौदागर चारों ओर खड़े हैं । लुभावनी और आकर्षक पैकिंग एवं योजनाओं के साथ । हमें जागरूक रहना है — आकर्षण में फँसना नहीं है ।

व्यसन और फैशन मनुष्य को स्वभावतः विनाश की ओर ले जाते हैं और शील और संयम सृजन की ओर । एक मरुस्थल है दूसरा सुहाना उद्यान । एक शवयात्रा है, दूसरी शिवयात्रा है । एक में स्वभाविकता का क्षरण है दूसरे में मुक्ति का वरण है । विकल्प आपके हाथ में है किसे चुनें ।

मैं आपको अब एक ऐसे शख्स के बारे में जानकारी दूँगी जो फुटपाथ से उठकर अपने चमत्कारिक खेल की बदौलत अरबपति बना, मगर व्यसन और फैशन की मशगुलता के चलते आज वह दाने-दाने को मोहताज हो गया है । आपने सुना होगा माइक टायसन को हाल में गिरफ्तार किया गया । उन पर नशे की हालत में गाड़ी चलाने और कोकिन रखने का आरोप लगा । हालांकि, कुछ समय बाद ही उनकी रिहाई हो गई, लेकिन उनका अदालत के चक्कर लगाने का सिलसिला अब भी जारी है । इस शख्स ने कभी सबसे कम उम्र (20 वर्ष 4 माह) में विश्व हैवीवेट चैम्पियन बन दुनिया को सकते में डाल दिया था । टायसन ने अपने पहले 19 मुकाबलों में एकतरफा जीत दर्ज की, और इस खेल के जरिये कुल 1800 करोड़ रुपए बटोरे, लेकिन व्यसन व फैशन परस्त जीवन-शैली के कारण आज यह पैसे-पैसे को मोहताज है, और लास वेगास (अमेरीका) के एक केसीनो में लोगों का मनोरंजन करते देखा जा सकता है, और परिणाम देखिए यहाँ आने वाले भी उसे कोई तवज्जो नहीं देते ।

टायसन अपने रहन-सहन पर हर माह करीब 1.8 करोड़ खर्च करता था । 1992 में उन्हें एक पूर्व सुंदरी से बलात्कार के आरोप में गिरफ्तार किया गया, और छह वर्ष की सजा सुनाई गई, मगर उन्हें तीन वर्ष बाद ही मई 1995 में रिहा कर दिया था । एक वर्ष बाद टायसन फिर से रिंग में उतरे, 1997 में उनका इंडाडर होलीफील्ड से बहुचर्चित मुकाबला हुआ । मैच के दौरान उन्होंने

होली फील्ड के दोनों कान चबा डाले, और मैच रैफरी ने उन्हें अयोग्य घोषित कर दिया। टायसन का केरियर उतार पर था, मगर उनके खर्चे बढ़ रहे थे। उनका अपने पर नियंत्रण समाप्त हो रहा था। इसी का नतीजा कि 1999 में मारपीट के आरोप में उन्हें फिर गिरफ्तार कर लिया गया, और पूरे नौ महीने जेल में काटने पड़े। जेल से रिहा होने के बाद टायसन ने हैवीवेट चैम्पियन लेनोक्स लुईस से लड़ने की ख्वाहिश जाहिर की, मगर नेवादा बॉक्सिंग कमीशन ने उन पर बलात्कार के आरोपों को देखते हुए लाइसेंस देने से इनकार कर दिया। उस समय उनकी कुल सम्पत्ति महज पांच हजार डालर रह गई थी। इसके बाद भी टायसन कई दफा रिंग में उतरे, मगर उन्हें कामयाबी नहीं मिली। 11 जून, 2004 को एक मुकाबले के दौरान टायसन ने अचानक बॉक्सिंग से संन्यास लेने का फैसला कर दुनिया को चौंका दिया। यूएसए टुडे को दिए एक इंटरव्यू में टायसन ने अपनी निराशा कुछ इस तरह जाहिर की, 'मेरा पूरा जीवन व्यर्थ हो चुका है। मैं व्यसन-फैशन परस्त जिंदगी के चलते विफल हो चुका हूँ। मुझे खुद से और मेरी जिंदगी से डर लगने लगा है।' टायसन जब यह इंटरव्यू दे रहे थे, उन पर करीब 150 करोड़ रुपए का ऋण बकाया था। अब वे कैसीनो और होटलों में मनोरंजन करके अपनी जिंदगी गुजार रहे हैं ये है व्यसन और फैशन का परिणाम।

आप देख रहे हैं आज फैशन भी भारत में एक रोग बनता जा रहा है। जिसके कारण हजारों परिवार तबाह हो गए हैं और हो रहे हैं। आज कुलीन घर की बेटा-बहू भी फिल्मी अभिनेत्रियों की तरह रहन-सहन में बाजी मारने लगी है। उनके खाने में फैशन, पीने में फैशन, वस्त्र पहनने में फैशन, बोलचाल रहन-सहन आदि के साथ सभी क्षेत्रों में फैशन जीवन का अंग बन गया है। युवक व्यसन में, युवती फैशन में, परिणाम पूरा परिवार टेंशन में।

हाल ही में अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने लंदन न्यूज साक्षात्कार में बताया कि अगर वे जिंदगी में भयंकर लत बन चुकी शराब को नहीं छोड़ते तो वे कभी-भी राष्ट्रपति पद तक नहीं पहुँच पाते। यह मेरे केरियर का सबसे माइनस पॉइंट बन गया था, जिसके कारण मुझे कहीं जगह करारी शिकस्त खानी पड़ी। अतः मैंने मजबूत संकल्प लेकर इसको छोड़ दिया। इसी संकल्प ने आज मुझे दुनिया का शंशाह बना दिया। मैं अपनी ओर से प्रत्येक अमेरिकी

नागरिकों को सावधान करना चाहूँगा कि वह अपने जीवन में इन व्यसनों के चक्कर में उलझे। यह हमारे घर, परिवार, इज्जत, केरियर और मस्तीभरी जिंदगी को तबाह कर देता है। क्या हम भारतवासी इस पर गौर करेंगे? युवाओं को मैं निवेदन करूँगी कि वे इस कत्ले ज़हर से दूर रहें और जो इस ज़हर को पी रहे हैं उन्हें इससे मुक्त होने की प्रेरणा दें और व्यसन-फैशन युक्त सरकारी नीतियों का जमकर विरोध करें ताकि देश व विश्व की आन-बान-शान को बचाया जा सके।

एक बार जार्ज बर्नाडे शा को एक महिला ने रात्रि भोजन हेतु निमंत्रित किया। काफी व्यस्त होने के बावजूद भी उन्होंने निमंत्रण स्वीकार कर लिया। अत्यधिक व्यस्त होने के कारण बर्नार्ड शा का जैसे ही कार्य समाप्त हुआ। सीधे उस महिला के घर गए। उन्हें देखते ही पहले तो महिला की आँखें खुशी से चमक उठी किन्तु अगले ही क्षण उसके चेहरे पर निराशा के भाव छा गए।

उसका कारण था कि शा अत्यन्त मामूली वस्त्र पहने हुए थे। उस औरत ने शा से कारण ज्ञात करना चाहा। उन्होंने कहा देर हो जाने के कारण वस्त्र बदलने का समय नहीं मिल पाया। फिर वस्त्रों से क्या होता है? वह महिला नहीं मानी। उसने कहा मेरा अनुरोध है आप जाकर अच्छे वस्त्र पहनकर आइए। शा ने कहा ठीक है — यह कहकर वह अपने घर चले गए। बहुत कीमती वस्त्र पहनकर आए यह देख महिला अत्यन्त प्रसन्न हुई।

भोजन प्रारंभ हुए थोड़ी देर हो गई थी। सभी शाँ से मिलना चाहते थे। सबने अचानक देखा कि शा आइसक्रीम तथा अन्य खाने की चीजों को वस्त्रों पर पोत रहे हैं। साथ ही कह रहे हैं — भोजन करो मेरे कपड़ों, भोजन करो। तुम क्रीमती हो इसलिए तुम्हारा मूल्य है। निमंत्रण तुम्हीं को मिला है इसलिए भोजन भी तुम ही करो।

सब कहने लगे — शाँ साहब आप यह क्या कर रहे हैं? शाँ ने कहा — मैं वही कर रहा हूँ मित्रों जो मुझे करना चाहिए। यहाँ निमंत्रण मुझे नहीं मेरे वस्त्रों को मिला है। इसलिए आज का खाना मेरे वस्त्र ही करेंगे। उनके यह कहते ही पार्टी में सन्नाटा छा गया। निमंत्रण देने वाली महिला की शर्मिंदगी की सीमा नहीं रही। वह समझ चुकी थी कि व्यक्ति का मूल्यांकन वस्त्रों से नहीं होता। प्रतिभा

से, गुणों से, संस्कारों से होता है।

वस्त्रों का निर्माण हुआ था तन ढकने के लिए, पर आज फैशन की यह हालत हो गई है कि स्त्रियों के, लकड़ियों के वस्त्र सिकुडते जा रहे हैं, तन खुलता जा रहा है। टी.वी. की बढ़ती संस्कृति विदेशों से नये-नये फैशन का आयात कर रही है। चाहे इस फैशन के कारण शुद्ध धर्म समाप्त हो जाए। शरीर महारोग का घर बन रहा है। मनुष्य क्षणिक वैषयिक सुखों की चकाचौंध में शाश्वत सुख को विस्मृत कर रहा है। वह फैशन के माध्यम से अपने अहंकार की प्रतिष्ठा की भूख को शान्त कर रहा है।

शादी-विवाह, बच्चों के जन्मोत्सव, गृह-प्रवेश आदि सभी स्थलों पर यहाँ तक कि तपश्चर्या, मन्दिर, उपाश्रय आदि स्थलों पर भी फैशन परेड होने लगी है। प्रदर्शन बढ़ता जा रहा है। रोशनी की जगमग, बिजली की चकाचौंध, फिल्मी नाच-गानों की भरमार औरों के साथ-साथ स्वयं की शांति को भंग करती है।

हमारे साधर्मि भाई, पड़ौसी यहाँ तक कि रिश्तेदार परिवार के ही सदस्य गरीबी से पीड़ित हैं, भूख से त्रस्त हैं, तन ढकने को वस्त्र नहीं है, सिर छिपाने को छप्पर नहीं है, किन्तु हम फैशन परस्त बनकर आलीशान विशाल वातानुकूलित बंगलों में रहते हैं, शराब उड़ाते हैं, प्रदर्शन, दिखावे में फिज़ूल खर्च करके अपने अहं का पोषण करते हैं।

हमें दोनों महारोगों से अविलम्ब छुटकारा पाना चाहिए। व्यसन जहाँ मनुष्य को काले नाग की तरह डसता है वहाँ फैशन मनुष्य की स्वाभाविकता पर राक्षस की तरह आक्रमण करती है। इन दोनों से मनुष्य की सात्विकता समाप्त हो रही है। यदि आत्मोन्नति करनी है तो दोनों से अविलम्ब मुक्ति पानी होगी। तभी मनुष्य मोक्षपद के सोपान की ओर अग्रसर हो सकेगा। अन्यथा ये पग-पग पर अवरोध उत्पन्न करेंगे।

आज मनुष्य को सूक्ष्म दृष्टि से यह देखने की आवश्यकता है कि उसकी जीवन नौका खतरनाक मोड़ की ओर अग्रसर तो नहीं हो रही है। यदि उस ओर बढ़ रही हो तो तत्काल ब्रेक लगाना चाहिए तथा उसे सही दिशा की ओर अग्रसर करना चाहिए।



कैसे सुधारें विचार और वाणी

यह हमारे हाथ में है कि हम
गले मिलने की बात करते हैं या गला काटने की।

तत्त्वार्थ सूत्र में जीव के पाँच भाव बताए हैं, औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक और पारिणामिक। जिस प्रकार कार चालक आवश्यकतानुसार गियर बदलता है उसी प्रकार हमारा मन भी विचार रूप गियर बदलता रहता है। यदि चालक उस कार को चलाते समय भली भाँति कन्ट्रोल नहीं करे तो दुर्घटना हो सकती है। और यदि मनुष्य अपनी वाणी और विचार पर कन्ट्रोल नहीं करेगा तो अनेक दुष्परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। यदि सृष्टि में भी कन्ट्रोल नहीं हो तो वहाँ भी विनाश लीला ही दृष्टि गोचर होगी। हमारे सामने जीता-जागता उदाहरण है हीरोशिमा और नागासाकी। यह दो बड़े शहर परमाणु बम पर कन्ट्रोल नहीं करने के कारण विनष्ट हुए और अब तक न मालूम कितने बम विस्फोट होकर असंख्य व्यक्तियों की जीवन लीला को समाप्त कर रहे हैं। यह विस्फोट हमारे कुत्सित विचारों को कन्ट्रोल में नहीं करने का परिणाम है। ठीक इसी तरह व्यवहारिक जिंदगी में मन और वाणी अनियंत्रित होने से भयंकर अनर्थ हो सकते हैं।

एक सच्ची घटना है। यूरोप के एक देश में दो सामान रूप से प्रतिभाशाली गायक रहते थे। इन दोनों में बड़ी दोस्ती थी। दोनों ने दुनिया भर में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की और धन भी कमाया। इस सब के बावजूद किसी बात को लेकर दोनों में ठन गई। सुलह-सफाई की सारी कोशिशें बेकार हो गई। दोनों ने घोषणा कर दी कि अब से वे कभी एक-दूसरे के साथ नहीं जाएंगे।

सभी कुछ ठीक चल रहा था कि इनमें से एक मिस्टर ए को ब्लड कैंसर हो गया। वह ऐसा समय था, जब इस बीमारी का इलाज अमेरिका के अस्पताल में ही हो पाता था। अब इस इलाज में और बार-बार अमेरिका की यात्राओं ने ए को कंगाल बना दिया। उनके लिए अब आगे इलाज करवा पाना लगभग नामुमकिन हो गया।

कुछ दोस्तों की सलाह पर उसने ऐसी संस्थाओं की तलाश की जो साधनहीन लोगों की, इलाज में सहायता करती हैं। भाग्य से, एक संस्था ने उसे न सिर्फ मदद देना स्वीकार किया, बल्कि उसकी इलाज के दौरान हर जरूरत पूरी करने को धन भी दिया। इस इलाज के नतीजे में ए स्वस्थ हो गया। धीरे-धीरे उसने रियाज कर फिर से गाना भी शुरू कर दिया। अब जब उसके पास फिर से धन-दौलत की वापसी हुई, तो उसने सोचना कि उसी संस्था की तरह, जिसने उसकी मदद की थी, वह भी एक संस्था बनाए। इस उद्देश्य से वह उस संस्था के कार्यालय पहुँचा और उसके गठन और कार्य पद्धति के लिए उसके कागज-पत्र देखे, तो वह हैरान रह गया। इस संस्था का गठन उसके दोस्त से दुश्मन बने मिस्टर बी ने किया था और वह भी उसके बीमार होने के बाद। उसने इस बात का भी पुख्ता इंतजाम किया था कि इस बात का पता ए को बिल्कुल न लगे।

उसी शाम जब बी एक कार्यक्रम दे रहा था, ए सीधे मंच पर चढ़ गया और हाल में बैठे सारे लोगों के सामने घुटनों के बल खड़े होकर बी से माफी माँगी और उसका शुक्रिया अदा किया। बी ने उसे उठाकर गले लगा लिया।

बी ने श्रोताओं से कहा कि वह मजबूर था। वह एक साथ दो चीजें खोने को तैयार नहीं था। एक दोस्त और दूसरा इतना खूबसूरत गायक। दोनों गले मिल गए।

एक ओर बी दोनों आज भी अपनी संस्थाओं के जरिए ज़रूरतमंद लोगों की सहायता कर रहे हैं। इंसान जैसा मन से सोचता है और वाणी से बोलता है वैसे ही परिणाम उसे प्राप्त हुआ करते हैं। अब यह हमारे हाथ में है कि हम गले मिलने की बात करते हैं या गला काटने की।

• मेरी समझ में सृष्टि में कोई भी वस्तु सर्वथा हेय या उपादेय नहीं है। उपयोग के आधार पर हेय-उपादेय भाव आधारित है जैसे अग्नि अच्छी भी है और बुरी भी। दीपक अच्छा भी है और बुरा भी। जब अग्नि खाना बनाने के काम आवे या उसका सदुपयोग हो तो वह अच्छी है। किन्तु उससे रुई के गोदाम में आग लग जाए तो वह अग्नि बुरी है। दीपक प्रकाश करे, अंधकार में अध्ययन में सहायक हो तो वह अच्छा है। किन्तु वही दीपक पुस्तक को जला दे तो बुरा है। इसी प्रकार वाणी है, शब्द है। ये स्वयं में न तो अच्छे हैं न ही बुरे। जिनेन्द्र का गुणगान करने में किसी को सन्मार्ग दिखाने में, सम्मान करने में शब्द उपादेय है और किसी को गाली दे तो शब्द हेय है। किसी को 'राम' कहने से व्यक्ति खुश होता है 'रावण' कहते ही झगड़ा हो जाता है। एक शब्द से खुशी है एक से दुःख है। शब्द का अच्छा बुरा होना उपयोग करने वाले पर निर्भर है। यही वाणी जब भगवान महावीर जैसे तीर्थंकर पुरुषों के मुख से निकलती है तो कइयों का जीवन बदल देती है और हिटलर, सद्दाम या राज ठाकरे के मुँह से निकलती है तो कइयों का जीवन समाप्त कर देती है।

अक्सर हम किसी भी चीज़ की बुराई को धड़ल्ले और बेबाकी से कर जाते हैं लेकिन किसी के उत्साहवर्धन के लिए हमारी जुबान से शब्द बड़ी मुश्किल से निकलते हैं। याद रखिए किसी की तारीफ में बोले गए कुछ उत्साहवर्धक शब्द जिंदगी तक बदल देने की क्षमता रखते हैं। वहीं किसी को व्यंग्यबाणों से धराशायी करना इसका विपरीत परिणाम देता है। अरे वाह! शर्मा जी आज तो आप सही समय पर ऑफिस आ गए। भई, बहुत बढ़िया। लेटलतीफ शर्माजी ने जैसे ही बॉस के मुँह से ये बात सुनी, खुश हो गए। उस दिन के बाद वे पूरी कोशिश करने लगे ऑफिस में नियत समय पर पहुँच जाने की। इसमें सही काम करने पर तारीफ़ पाने का मोह तो था ही साथ ही उन्हें अपने लेटलतीफ के खिताब से भी मुक्ति मिल गई। वहीं दूसरी ओर शर्माजी की ही तरह ऑफिस देर से पहुँचने के आदी नारायण का स्वागत किया। वाह!

नारायण आज तो सूर्य नारायण पश्चिम से निकल आया जो समय पर तुम आ गए। वहाँ मौजूद सारे लोग बॉस की इस बात पर खिलखिलाकर हँस पड़े और नारायण मायूस हो गया। आज उसने यदि कोई अच्छी आदत अपनानी चाही तो उसे प्रतिफल के रूप में तारीफ नहीं बल्कि व्यंग्यबाण सुनने को मिले। काश! नारायण के बॉस शर्माजी के साहब की तरह दो मीठे बोल कह देते तो उसे भी अच्छी आदत अपनाने की प्रेरणा मिलती।

मनुष्य विवेकी है। यदि कोई छोटा बच्चा किसी जानवर को सताता है, पत्थर मारता है तो उस बच्चे को माता-पिता कहते हैं बेटा! ऐसा मत करो। ऐसा करना अच्छा नहीं है। उसे शिक्षित करते हैं। गलत काम करने के लिए मना करते हैं, पर यदि एक शिक्षित व्यक्ति ही गालियाँ देने लग जाए, मारपीट करे तो शिक्षित एवं अज्ञानी में क्या अन्तर रह जाएगा। आज हम देख रहे हैं अग्नि का प्रयोग सार्वजनिक सरकारी सम्पत्ति, कार्यालयों आदि को जलाने में किया जा रहा है।

सर्वत्र तोड़फोड़ करते हुए आग लगाकर सब कुछ स्वाहा करने वाले विद्यार्थी यदि अपने अज्ञान को जलाएँगे तो वे ज्ञानी बन जाएँगे, पर विडम्बना है वह अपने अज्ञान को आग नहीं लगाते, अज्ञान का निवारण करके ज्ञान के प्रकाश को प्रसारित करने वाले विद्यालय-महाविद्यालयों को आग लगाते हैं।

श्रेष्ठ कार्यों के लिए विचारों को श्रेष्ठ रखना होगा। इस हेतु विचार और वाणी पर अंकुश होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि आप वाणी और विचारों की पवित्रता को स्थायी बनाना चाहते हैं तो सर्वप्रथम हमें विचार और वाणी के स्रोत को ढूँढ़ना चाहिए। विचार का स्रोत मन है, वाणी का उद्गमस्थल वचन है। मन से ही सम्पूर्ण शुभ-अशुभ विचार उत्पन्न होते हैं और वाणी से अच्छे-बुरे वचन निकलते हैं। जैसा हमारा मन होगा वैसे ही वचन होंगे। मन को श्रेष्ठ विचारों हेतु अभ्यस्त किया जाए, आध्यात्मिक चिंतन, स्व-पर कल्याण के चिंतन का आधार बनाया जाए प्रशिक्षण से पवित्र किया जाए तो निःसन्देह यह अपवित्र, अहितकारी मनन चिंतन नहीं करेगा। जब मन उत्तम होगा तो विचार भी उत्तम होंगे। हमें मन को बुरे विचारों से हटाकर सुसंस्कृत करना चाहिए। दृढ़तापूर्वक बुरे विचारों को खदेड़ना चाहिए। यदि हम विचारों और वाणी दोनों

में ही असावधानी रखी, दुर्विचार या दुर्भाषा को दूर नहीं किया, उन्हें पपोलना शुरू कर दिया तो वे हमको पछाड़ देंगे, हम पर हावी हो जाएँगे। हम लाख प्रयत्न करेंगे फिर भी वे जल्दी से बाहर नहीं निकलेंगे।

एक माँ ने मुझे बताया कि मेरा बेटा शुरू से पढ़ाई में काफी होशियार था। वह कक्षा में हमेशा प्रथम आता था। जब नौवीं कक्षा में हमने उसका दाखिला दूसरे स्कूल में करवाया, तो उसकी दोस्ती एक ऐसे लड़के से हो गई, जो पढ़ाई में कमजोर था और बातूनी था। वह किसी-न-किसी बहाने हमारे घर आ जाता था और अपना व मेरे बेटे का समय बर्बाद करता।

वार्षिक परीक्षा के नतीजे में मेरे बेटे की द्वितीय श्रेणी आई, जिसे देखकर मैं बहुत दुःखी हो गई। मुझे लगा, नतीजा बिगड़ने का एकमात्र कारण यही बातूनी दोस्त है। मैंने अपने बेटे से उस लड़के का नतीजा पूछा, तो पता लगा कि वह फेल हो गया है। यह बात सुनकर, मेरे मुँह से निकला, 'चलो, अच्छा ही हुआ, कम-से-कम अब तो उससे पीछा छूट ही जाएगा।'

मेरे ये शब्द सुनकर मेरा बेटा तुरंत बोला, 'मम्मी, आपने तो हमेशा मुझे यही समझाया है कि किसी के बारे में बुरा मत सोचो, बुरा मत बोलो और आप खुद ही ऐसा कह रही हैं। मेरे अंक कम आने पर जब आप इतनी परेशान हो रही हैं, तो उसके पेरेन्ट्स कितनी दुखी होंगे। मम्मी मैं अगले साल खूब पढ़ाई करूँगा और चाहता हूँ कि वह भी पढ़े और पास हो जाए।' छोटे-से बच्चे के मुँह से ऐसी समझदारी की बात सुनकर मुझे अपनी कथनी-करनी में अतर का अहसास हुआ। इस घटना के बाद मैंने आज तक कभी भी दूसरों का बुरा नहीं सोचा। मेरे से जितना हुआ दूसरों के लिए अच्छा करने का प्रयास किया।

मूँग का एक दाना भी भूमि में बो दिया जाए है तो बीज से पौधा बन जाता है। पौधे में फलियाँ लगती हैं अनेक दाने बन जाते हैं। इसी प्रकार हमारी एक छोटी-सी शुभ-अशुभ भावना से, विचार से अनेकानेक शुभ-अशुभ फल प्राप्त हो जाते हैं। भावनाओं में अर्थात् विचारों में अद्भुत शक्ति होती है। महान् विचार कार्य रूप में परिणत होने पर महान् कर्म बन जाते हैं। विचारों का जीवन के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसलिए यह समझ लेना आवश्यक है कि विचार अदृश्य रूप में काम करते हैं और उनसे उसी प्रकार के परिणाम निकलते

हैं। वाणी पर असंयम अनर्थ एवं वैर की परम्परा को बढ़ाने वाले हैं। यह शृंखला कई जन्मों तक चलती है। बन्दूक की गोली या तलवार के प्रहार से होने वाला घाव तो दो-तीन माह में भर जाता है, परन्तु तीखे एवं कटुवचनों के प्रहार से होने वाला घाव जन्म-जन्मान्तर तक नहीं भरता।

कहते हैं : दुर्योधन जब पाण्डवों का नवीन भव्य राजमहल देखने जाते हैं तब द्रौपदी महल के झरोखे में बैठी हुई थी। दुर्योधन राजमहल की इस विशेषता से अनभिज्ञ थे कि कहाँ जल है कहाँ भूमि। जहाँ जल था वो भूमि-सी प्रतीत हो रही थी, जहाँ भूमि थी वो जल प्रतीत हो रहा था। दुर्योधन जल को ज़मीन समझकर कुदने लगे और ज़मीन को जल समझकर शीघ्रता से चलने लगे जिससे उनके कपड़े भीग गए। द्रौपदी यह देखकर हँसती है और व्यंग्यपूर्ण वाणी में कहती है आखिर 'अंधे के पुत्र अंधे ही होते हैं।'

इस तीव्र व्यंग्यवचन रूपी बाण से दुर्योधन के तन-बदन में आग लग गई। उसने मन-ही-मन द्रौपदी से बदला लेने का विचार किया। परिणामस्वरूप उसने पाण्डवों को जुआ खेलने के लिए ललकारा। जुए में हारने पर द्रौपदी को दाँव पर रखा गया। उसे जीतकर और उससे बदला लेने की तीव्र अभिलाषा के अनुसार द्रौपदी को चीरहरण करने हेतु बुलवाया। जिस महाभारत का बीजारोपण हुआ इसके पीछे व्यंग्यपूर्ण वाणी ही उत्तरदायी थी। अगर द्रौपदी वाणी संयम रखती तो यह अनर्थ नहीं होता।

वाणी पर संयम हेतु विचारों का संयमित होना अत्यन्त आवश्यक है। मन का काम सतत् चिंतन-मनन करना तथा सोचना विचारना है। चाहे वह अच्छा विचार करे या बुरा, दुश्चिन्तन करें या सुचिन्तन। कुछ-न-कुछ तो करता ही रहता है। अगर आप सुविचार के धनी नहीं बनेंगे तो आपका मन बुरे विचारों में प्रवृत्त होगा। विचारों के स्रोत मन को सुचिन्तन, आध्यात्मिक चिन्तन की ओर प्रवृत्त करना अत्यन्त आवश्यक है अन्यथा साधु हो या गृहस्थ, राजा हो रंक। सृष्टि का कोई भी जीव हो सभी को इसके दुष्परिणाम भुगतने पड़ते हैं।

दण्डकारण्य के महाराजा कुम्भकार की रानी पुरन्दरयश आचार्य स्कन्दक की बहन थी। एक बार आचार्य स्कन्दक अपने पाँच सौ शिष्यों सहित अपनी बहन को प्रतिबोध देने के लिए दण्डकारण्य आए और शहर की वाटिका में

ठहर गए।

महाराज कुम्भकार के मंत्री पालक ने जैसे ही आचार्य स्कन्दक को देखा उसे अपने पूर्व के अपमान का स्मरण हो गया कि इसने अपने गृहस्थ जीवन में भरी सभा में मेरा अपमान किया था। अब मेरा समय आ गया है मैं अपने अपमान का बदला लेकर ही रहूँगा। यह दृढ़ निश्चय करके उसने वाटिका में रातों रात पाँच सौ हथियार गड़वा दिए और राजा से आकर कहा — महाराज! आपके उद्यान में डाकू आकर ठहरे हैं वे आपसे आपके राज्य को हड़पना चाहते हैं।

राजा कुम्भकार ने आश्चर्य चकित होकर कहा — मंत्रीवर! यह तुम क्या कह रहे हो। यह तुम्हारा भ्रम है। उद्यान में जैन श्रमण ठहरे हैं और उनके आचार्य स्कन्दक मेरे साले हैं। वे डाकू नहीं हैं।

मंत्री — राजन् यदि आपको विश्वास नहीं हो गुप्तचरों की सूचना के आधार पर भूमि खुदवा कर देख लीजिए कि वहाँ हथियार गड़े हुए हैं या नहीं?

कुम्भकार ने वास्तविकता को जानने के लिए, सच्चाई की परीक्षा के लिए प्रातःकाल वाटिका की जमीन खुदवाई तो वहाँ से पाँच सौ हथियार प्राप्त हुए।

राजा आग बबूला हो गया। उसका ज्ञान तिरोहित हो गया। अज्ञान के बादल छा गए। विवेक का दीपक बुझ गया और राजा का आचरण अंधा हो गया। राजा ने मंत्री से कहा — तुमने बहुत बड़े संकट से उभारा है। इसलिए तुम्हारी इच्छानुसार साधुओं के दण्ड की व्यवस्था करो। मंत्री का षडयंत्र सफल हुआ। मन की मुराद पूर्ण हो गई। उसने योजना बनाई एक कोल्हू उठाकर तुरन्त उद्यान में पहुँचाया गया। ज्ञानियों ने कहा कि सोच कर, समझ कर विचार किया करो। किसी भी कार्य को एकाएक मत करो, लेकिन क्रोधान्ध, विषयान्ध व्यक्ति कुछ नहीं देखते।

प्रातःकाल की बेला में क्रोध में धमधमाता पालक शांतिपूर्वक अध्ययन कर रहे आचार्य स्कन्दक के पास गया। महाराज स्कन्धक, मैं एक-एक साधु को, तुम्हारे सामने घाणी में पीलूँगा फिर तुम्हारा नंबर है। आचार्य स्कन्दक ने कहा — बिना कारण यह सब क्या? यदि तुम्हें पीलना ही है तुम मुझे पीला दो।

इन सब निरपराधियों को क्यों पिल रहे हो ?

पालक के सिर पर वैर का बदला लेने का भूत सवार था। अतः उसने एक-एक शिष्य को भेजने का आदेश दिया। कुछ भी सुनने को तैयार नहीं हुआ। स्कन्दक ने अपने मुनियों से कहा — सावधान! संकट आया है। उपसर्ग आया है। संथारे का प्रत्याख्यान करो, सबसे क्षमा याचना करते हुए मोह-ममता का त्याग करो तथा परमात्मा में ही लीन बनो।

आचार्य के एक-एक शिष्य अपने गुरु को वंदना करके संथारे का प्रत्याख्यान की आराधना करने लगे। आचार्य महाराज ने कहा — मंत्रीवर्य तुम सबसे पहले मेरा नंबर ले लो। तुम्हें जो कष्ट देना है वह कष्ट मुझे दो। मेरे इन शिष्यों को छोड़ दो। मंत्री ने कहा — मैं तुम्हारे ही सामने तुम्हारे शिष्यों को एक-एक करके पीलूँगा। फिर तुम्हारा नंबर आएगा।

नर पिशाच एक-एक शिष्य को घाणी में पील रहा है। गुरु महाराज आराधना करवा रहे हैं। रक्त की धारा प्रवाहित हो रही है। फिर भी मंत्री शांत नहीं हुआ। उसने 499 साधुओं को निर्दर्यता से कोल्हू में पील दिया। अब एक बाल साधु बचा था। उसके प्रति आचार्य श्री का मोह जाग्रत हो गया। उन्होंने पालक से कहा — यह मेरा छोटा शिष्य है। इसे बाद में पीलना। पहले मेरा नंबर लगा दो। पालक नहीं माना। आचार्य महाराज को क्रोध आ गया। इधर छोटा-सा मुनि गुरु महाराज से कह रहा है कि मेरे को आराधना करवाओ, पच्चक्खाण करवाओ पर क्रोध के वशीभूत आचार्य महाराज ने एक नहीं सुनी। उन्होंने क्रोध के वशीभूत होकर कहा, अगले भव में तुम्हारी क्या स्थिति होगी? यहाँ वे संयम व मर्यादा से चूक गए और बोलते गए।

निर्दयी पालक ने छोटे से संत को कोल्हू में पीला दिया। इस प्रकार पाँच सौ शिष्य अपने मन को पूर्णतया निर्मल, निर्द्वन्द्व और दृढ़ रखने के कारण आराधना, साधना करते हुए मोक्ष चले गए, पर अपने छोटे से शिष्य की बारी पर आचार्य श्री का मोह जाग गया, भाव बदले। वे अपने मन को पूर्णतया कषाय रहित नहीं रख पाए। परिणाम स्वरूप अशुभ भाव और विचारों के कारण वे मोक्ष में जाने से वंचित रह गए। मात्र मोह के कारण उत्पन्न अशुभ भाव उनके मोक्ष गमन में बाधक बने।

जिस प्रकार कीचड़ में गिरा हुआ सोना कीचड़ में लिप्त नहीं होता, इसे जंग नहीं लगता उसी प्रकार ज्ञानी संसार के पदार्थों से विरक्त होकर कर्म करता हुआ भी कर्म से लिप्त नहीं होता। किन्तु जैसे लोहा कीचड़ में गिरकर विकृत हो जाता है उसमें जंग लग जाता है उसी प्रकार अज्ञानी व्यक्ति पदार्थों में राग-भाव रखने के कारण कर्म करते हुए विकृत हो जाते हैं। कर्म से लिप्त हो जाते हैं। फलस्वरूप आत्मा कर्मों के बंधन में बंध जाती है।

मनुष्य की प्रसन्नता, अप्रसन्नता का आधार उसके विचार है। दो व्यक्ति समान परिस्थिति, समान परिवेश के होते हैं, पर एक अपने सोच के आधार पर, विचार और भावना के आधार पर विषाद, परेशानी का अनुभव करता है और दूसरा उसी परिस्थिति में सदा सुख का अनुभव करता है। वास्तव में सुख और दुःख की अनुभूति मन से होती है। अक्सर यह भी देखा जाता है कि लोग सुखी होने पर भी दूसरों को सुखी एवं स्वयं को दुःखी समझते हैं। अपने भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही सुखों की अनुभूति नहीं कर पाते हैं। हर समय अपने जीवन में खाली गिलास अर्थात् दुःख को ही देखते हैं। आधे भरे गिलास अर्थात् जो भी सुख मिल रहा है उसका आनन्द नहीं उठाते। किसी ने कहा भी है —

बहुत से लोग बस अपने दुःखों के गीत गाते हैं,
दीवाली हो या होली हो सदा मातम ही मनाते हैं,
पर दुनिया उन्हीं की रागिनी पर झूमती है हरदम,
जो जलती चिता में बैठकर वीणा बजाते हैं।

एक आदिवासी ने अपने गाँव में एक आदमी के जीवन की घटना का जिक्र करते हुए बताया कि सुखराम नामक व्यक्ति जंगल से लकड़ियाँ काटकर लाता और उन्हें बेचकर जो पैसे मिलते उनसे रूखा-सूखा खाकर रात को सो जाता। दिनभर की थकान से चूर होकर जब वह रात को अपनी टूटी खटिया पर सोता तो सुबह ही उसकी आँखें खुलती। किसी बात की चिंता या फ़िक्र नहीं थी उसे। कुछ दौलत नहीं थी, परआराम से दो वक्रत पूरा खाने को मिल जाए और तन ढंकने को कपड़े, इसी में सुखराम मस्त था।

लेकिन इसके ठीक विपरीत लकड़हारे की पत्नी को इतने में संतोष नहीं था। वह दिन-रात सुखराम को कोसती रहती कि कोई और ऐसा काम करें,

जिससे उसे और मुनाफा हो और वे आराम से अपनी जिंदगी बिना सके। जब सुखराम पत्नी से उलाहने सुनता तो और अधिक लकड़ियाँ काटता, जिससे अधिक धन मिल सके। पहले वह शाम होते ही लकड़ियाँ काटकर गधे पर लादकर घर चल देता था। लेकिन अब वह अंधेरा घिरने तक लकड़ियाँ काटने में व्यस्त रहता। पहले से आमदनी तो जरूर अधिक हो गई थी, फिर भी वह धनी नहीं हो पा रहा था।

ऐसे ही एक सर्दी की अंधेरी, ठिठुरती रात में देर तक लकड़ियाँ काटकर गधे पर लादकर अपने घर की ओर लौट रहा था तो पेड़ के नीचे से किसी की आवाज़ सुनकर एकदम से ठिठका। आँख गड़ाकर देखा तो वहाँ एक ऋषि बैठे थे। लेकिन वे सर्दी से काँप रहे थे। सुखराम को ठहरा देखकर ऋषिवर बोले, 'भाई, बहुत सर्दी है, मुझे आग तापने के लिए कुछ लकड़ियाँ दोगे?' सुखराम ठिठका। साधु महाराज ने लकड़ियाँ माँगी है। अगर नहीं देगा तो कहीं श्राप न दें, और अगर दे देता है तो उसका देर तक किया गया श्रम व्यर्थ ही चला जाएगा। वह उलझन में पड़ गया। उसे उलझन में पड़ा देखकर ऋषिवर बोले, 'रहने दो भाई, तुम जाओ, तुम्हें देर हो रही होगी। मैं रात किसी तरह गुजार लूँगा।' यह सुनकर सुखराम लज्जित हो गया। उसने सोचा, 'धन के लालच में वह कितना नीच हो गया है कि थोड़ी-सी लकड़ी साधु को देने में संकोच कर रहा है।' अपने आप से लज्जित होकर सुखराम ने गधे से सारी लकड़ियाँ उतारकर ऋषिवर के आगे डाल दी और आग जलाने लगा। जब आग जल उठी और वातावरण में थोड़ी गर्माहट आने लगी तो वह वहाँ से जाने को तैयार हुआ। जब ऋषि ने कहा, 'भाई, तुम भी कुछ देर के लिए आग ताप लो।' ऋषि के आग्रह पर लकड़हारा आग तापने तो बैठ गया, पर उसे घर की चिंता सताने लगी। वह जानता था कि घर जाते ही उसकी पत्नी जब उसे खाली हाथ देखेगी तो दुत्कारेगी। हो सकता है कि वह उसे खाना भी न परोसे। वह चिंता में पड़ा हुआ था और ऋषिवर उसे देख-देखकर मुस्करा रहे थे। 'क्यों वत्स, दुःख हो रहा है, मगर इन लकड़ियों के बदले में मैं तुम्हें एक सोने की अशर्फी दूँ तो तुम्हारा काम चल जाएगा।' सोने की अशर्फी मिल सकती है, यह सोचकर लकड़हारा तो आश्चर्य में पड़ गया और साधु की ओर देखने लगा। उसने तो अपने जीवन में सोने की अशर्फी देखी तक नहीं थी।

उसे कुछ न बोलते देख ऋषिवर ने अपना कमंडल उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, 'अच्छा, तो चलो तुम ये मेरा कमंडल ही रख लो, इसमें पाँच अशर्फियाँ हैं, इन्हें निकाल लोगे तो इसके अन्दर से फिर से पाँच सोने की अशर्फियाँ ही निकलेंगी। लेकिन एक दिन में एक ही बार ये पाँच अशर्फियाँ निकल सकती है। हाँ एक और बात ध्यान रखना, इस कमंडल की सदा रक्षा करना, अगर एक बार चोरी होकर दूसरे हाथों में चला गया तो फिर से ये चमत्कार नहीं रहेगा।'

'मैं इसे छाती से लगाकर रखूँगा महाराज!' उतावला सा सुखराम लगभग ऋषि के हाथ से कमंडल छीनकर घर की ओर भागा। यहाँ तक कि उसे अपने गधे का भी ख्याल नहीं रहा। अब सुखराम के तो दिन ही बदल चुके थे। वह रोज़ाना कमंडल से पाँच अशर्फियाँ निकालता और खर्च करता। कम खर्च कर और पैसे बचाकर उसने नया मकान बना लिया। पत्नी के पास नए कपड़े, जेवर हो गए। लेकिन उसका सुख-चैन जाता रहा। वह हर समय कमंडल की रक्षा में ही चिंतित रहता। कभी भी उसे अपने से अलग नहीं होने देता। रात भर जागता रहता, अगर कभी आँख लग भी जाती तो कमंडल-कमंडल कहते हुए जाग उठता।

कुछ ही दिनों में मेहनत को सबसे प्रिय मानने वाला सुखराम अब पागलों जैसा हो गया। नींद न आने से परेशान एक दिन वह उठा और नदी किनारे जाकर चुपचाप से वह कमंडल उस नदी में फेंक दिया। कुछ देर तक तो कमंडल नदी में डूबता-उतरता रहा, फिर गहरे जल में डूब गया। इससे सुखराम को बहुत शांति मिली।

वह जंगल की ओर चल दिया। इतने में ही उसे अपने गधे याद आए। उन्हें ढूँढ़कर वह उनसे गले मिला और ख़ूब रोया। प्यार से गधे की पीठ थपथपाई। उसी पेड़ के नीचे उसे अपनी कुल्हाड़ी भी मिल गई। बस, वह तभी से अपने लकड़ी काटने के काम में लग गया।

रात को लकड़ी का गट्ठर आँगन में डालकर खाना खाया और सोया तो गहरी नींद के बाद अगली सुबह ही उसकी आँख खुली। उठते ही उसने अपने हाथों को चूमा। वह जान गया था कि यह हाथ ही उसके अशर्फी देने वाले

कमंडल थे।

मानव जीवन में पाने की पिपासा कभी शांत नहीं होती। तृष्णा एक ऐसा रोग है जो सारा सागर पी जाने के बाद भी शांत नहीं होती। यही कारण है कि चाहिए का चक्कर कभी शांत नहीं होता और अन्त में चाहिए की चक्की मनुष्य को पीस कर राख कर देती है। इसलिए हे प्राणी, यदि दो पाटों के बीच में पिसने से स्वयं को बचाना चाहता है तो 'और चाहिए' का चक्कर छोड़ दे क्योंकि यह सारी समस्याओं की जड़ है। जिस दिन तुम चाहिए को छोड़ दोगे समझ लो तुम्हारा कल्याण हो जाएगा।

जीवन की हर परिस्थिति में वीणा बजाने का काम वे ही कर पाएँगे जिनकी भावना एवं विचार उत्तम होंगे। वे ही अपने कर्म मल का क्षय कर सकेंगे। आत्मोन्नति की जिसके मन में चाह है उसका पथ पथरीला, कंटीला हो सकता है। क्योंकि उत्थान का मार्ग ही त्याग युक्त होता है। हम विश्लेषण करें, देखें संसार में, जिन्होंने भी विजय प्राप्त की है वे अपनी निस्पृहता, क्षमा, त्याग, बलिदान, सहिष्णुता, समन्वय आदि अनेकानेक गुणों के धारक रहे हैं।

हमारा जीवन नदी के प्रवाह की भाँति प्रति पल आगे बढ़ता जा रहा है। हमें प्रत्येक क्रदम सावधानीपूर्वक रखना है। हम डगमगा नहीं जाए इसके लिए कुत्सित विचार, और कटुवाणी का त्याग करना है। यदि मानव जीवन में हमारे क्रदम डगमगा गए तो अन्य कोई भी भव हमें मुक्ति मंजिल की ओर नहीं ले जा सकता है।



बेहतर व्यवहार है श्रेष्ठ उपहार

अपने व्यवहार को ऐसा बनाओ लोगों को लगे जैसे आप उन्हें फूलों का गुलदस्ता भेंट कर रहे हो।

व्यक्तित्व निर्माण के जितने भी चरण हैं उनमें सबसे प्रमुख चरण है व्यावहारिक होना। सद् व्यवहारी और सदाचारी जहाँ जाता है वहाँ प्रेम पाता है और अपनी ओर से प्रेम लुटाता है। मनुष्य का अधिकांश समय किसी-न-किसी के साथ निकलता है। जीवन की सफलता के लिए व्यवहार और व्यवसाय दोनों ही ऐसे हों जिनसे किसी का अहित न हो क्योंकि यही जीवन-विकास का मूल मंत्र है। सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन की सफलता का प्रथम सोपान सद् व्यवहार है। जब तक शरीर है, तब तक मुट्टी भर अन्न की आवश्यकता अवश्य ही पड़ेगी। उस समय तक व्यवहार-व्यवसाय दोनों ही करने होंगे। इसलिए व्यवहार अवश्य करो, किन्तु व्यवहार करते समय विवेक रखो।

एक पति ने पत्नी को डाँटते हुए कहा — कितनी बार कहा है कि मेरी सब्जी में नमक कम डाला करो। मेरा ब्लड प्रेशर पहले ही ज़्यादा है। तुम

समझती क्यों नहीं ? पत्नी रसोई में पति के लिए गर्मागर्म फुल्के सेंक रही थीं। 'मैंने जानबूझ कर ऐसा नहीं किया, जल्दबाजी में ऐसा हुआ है।' वह वहीं से बोली। लाओ मैं इस सब्जी में एक टमाटर, दो-तीन प्याज डालकर पुनः पका डालती हूँ। नमक भी कम हो जाएगा। वह धीमे स्वर में कह बैठी।

नहीं..... रहने दो। मुझे नहीं करना नाश्ता-वाश्ता। पति गुस्से में बड़बड़ाता कार्यालय चला गया। पत्नी काम में जुटी रही, उसने भी नाश्ता नहीं किया। दोपहर तक पति ने फोन तक भी नहीं किया, उसे। नहीं तो कार्यालय के दूरभाष से तीन-चार बार उससे रोज बतिया लेते।

दोपहर में जब पति लंच करने आए तो पत्नी ने दरवाजे पर मुस्कुरा कर उनका स्वागत किया। 'देखो मैंने तुम्हारी मन पसंद डिश बनाई है, उंगलियाँ चाटते रह जाओगे।' वह खाना परोसते कहने लगी।

उसे भूख सता रही थी। वह खाने पर टूट पड़ा था। उसने पत्नी से इतना भी नहीं पूछा कि तुमने नाश्ता किया भी या नहीं। खाना खाते अचानक लाईट बंद हो गई, गर्म खाना खाते-खाते पसीना बहा जा रहा था। पत्नी झट से पंखा झलने लगी। वह खाना खाते सोच रहा था, उसकी पत्नी उसका कितना ख्याल रखती है। कितनी अच्छी है वह। पत्नी, पति को खाना खाते देखकर प्रसन्न थी। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था मानो उसकी अतृप्त आत्मा की भूख मिटती चली जा रही थी। सद् व्यवहार क्रोधी को भी शांत बना देता है और दुश्मन को भी मित्र। सद् व्यवहार के लिए अगर कोई जखरी तत्व है तो वह सही दृष्टि।

किसी से भी व्यवहार बिगड़ता हैं तो उसके कारणों में मूल कारण है दूसरों के प्रति दोष दृष्टि। दूसरों के दोष देखने से हमारी आँख, मन और वाणी दूषित हो जाते हैं। आज का मनुष्य इतना व्यस्त है कि अपने परिवार और व्यापार को एक पल भी नहीं छोड़ सकता है। फिर भी ज़रा-सी बात पर लड़ाई-झगड़े और फिर कोर्ट कचहरी के चक्कर लगाते हुए लोग नज़र आ जाते हैं।

एक भाई मेरे पास आए। मुझसे बोले — 'महाराज! मुझे ऐसा मंत्र दीजिए, जिसके बल पर कोर्ट में मेरी जीत हो।'

मैंने पूछा — 'कौन-सा केस है?'

वे बोले — ‘अपने भाई के विरुद्ध मैंने दावा किया है?’

वे बोले — ‘मेरी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी। भाई ने कहा, किराये के मकान में न रहकर मेरे साथ रह जाओ। अब मैंने अपना मकान बनवा लिया है। मैंने उनसे कहा — यदि तुम मुझे तीन लाख रुपये दो तो मैं मकान खाली कर दूँगा। उन्होंने रुपये देने से इंकार करते हुए कहा तुम मेरे भाई हो यह घर भी तुम्हारा है। जब तक रहना चाहते हो रह सकते हो मैं तुम्हें रुपये नहीं दे सकता हूँ।’

भाइयों के इस संवाद को सुनकर मेरी आश्चर्य की सीमा न रही। एक तो चोरी फिर सीना चोरी।

वह रोज रामायण का पाठ करता था फिर भी राम-भरत के बंधुत्व-प्रेम का उसमें अंश मात्र भी प्रवेश नहीं हुआ।

कैकयी ने जब राम से वन में जाने के लिए कहा तो बिना किसी अशांति के राम ने केवल इतना ही कहा, ‘माँ तुमने मेरे मन की बात कही है। मेरा भाई भरत शाश्वत सुख प्राप्त करे इसके लिए तो मैं हमेशा के लिए वन में रहने को तैयार हूँ।’

भरत ने भी जब तक राम वन में रहे, तब तक महल में रहकर भी तप किया। भरत ने भी अन्न नहीं खाया।

आप ही बताइए क्या दुनिया में भाइयों का ऐसा उच्च व्यवहार मिलता है ?

आज रामायण पढ़ने वाले, महाभारत को चरितार्थ कर रहे हैं। भाई-भाई कोट में लड़ते हुए दिखाई देते हैं। दोनों का ही नाश होता है कितना आश्चर्य जनक है। इसका कारण व्यक्ति की स्वार्थ बुद्धि है। जब तक व्यक्ति का स्वार्थ समाप्त नहीं होगा तब तक रामराज्य की स्थापना नहीं की जा सकती है।

आज हम छोटी-सी बात पर दुःखी हो जाते हैं और सोचते हैं कि मुझे अमुख व्यक्तियों ने अपमानित किया है, अमुक व्यक्ति के कारण मेरी यह स्थिति हुई है, पर वह यह भूल जाता है कि कहीं-न-कहीं मेरी भी गलती रही होगी। इसलिए मुझे समझाया गया है। अपने सकारात्मक सोच के अभाव में, अहंकार में या स्वार्थ वृत्ति के कारण ऐसा होता है। मैं बड़ा हूँ मैं जो सोचूँ, कहूँ

वैसा ही व्यवहार होना चाहिए। हम अपनी हर बात दूसरों से मनवाये यह संभव भी नहीं है और उचित भी नहीं है।

एक पुत्र ने अपने पिता से आकर कहा — ‘पिताजी अब हमारा परिवार बड़ा हो गया, मेरी भी अपनी इच्छाएँ हैं इसलिए मैं अलग होना चाहता हूँ।’ पिता एकदम चौंककर बोले — ‘क्या कहा तूने! मैं मेरे जीते जी किसी को अलग नहीं होने दूँगा। समाज में क्या मुँह दिखाऊँगा।’

पुत्र ने कहा — ‘इसमें हर्ज ही क्या है? जितने बेटे होते हैं उतने चूल्हे तो जलते ही हैं? आज आप अपने भाइयों के साथ हैं तो क्या हुआ? आपके पूर्वज तो अन्त में अलग हुए ही थे। कोई पहले हो या बाद में इसमें क्या फ़र्क पड़ेगा। आखिर आपको देर से ही सही पर यह व्यवस्था तो करनी ही पड़ेगी।’

पिता ने कहा — ‘मुझे तुमसे ऐसी उम्मीद कतई नहीं थी। मेरी सात पीढ़ियों की इज्जत तू मिट्टी में मिला रहा है। यह सब सुनने- देखने से पहिले मैं मर जाता तो ठीक था। मैं अलग नहीं करूँगा। यदि उसके बावजूद भी तू अलग होता है तो मुझे पानी पीने का त्याग है।’ यह संकल्प देखकर पुत्र पसीज गया, पैरों में गिरकर क्षमा माँगी और अपने स्वच्छंद विचार त्याग दिए। उम्र में बड़ा होने से परिवार में कोई बड़ा नहीं होता जो समय आने पर त्याग का बड़प्पन दिखाया करता है वही अपने व्यवहार से बड़ा बन जाता है।

इस घटना में हुए पिता-पुत्र के व्यवहार एवं संवाद पर हमें चिंतन करना होगा। संयुक्त या एकाकी परिवार की व्यवस्था जीवन-शैली है, अपराध और बोझ नहीं है। किसी को बड़े परिवार में रहने का आनंद आता है, किसी को छोटे परिवार में रहने का। जहाँ परिवार का कोई भी सदस्य समस्या को समझें बिना प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाता है तो समाधान की अपेक्षा और समस्याएँ उत्पन्न हो जाती है। समझदारी एवं समाधान इसी में है कि अपने पूर्वाग्रह का त्याग करके, वास्तविकता का अन्वेषण करें, क्रियाविति करें इसे प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं बनावें।

किन्तु इस वार्तालाप में उत्तरदायित्व से विमुख होने का संकेत भी है। यदि कर्तव्य से घबराकर, सेवा के दायित्व से बचकर निकलने की सोचते हैं तो यह हमारी ग़लत दिशा है, अपराध वृत्ति है, दूषित विचारधारा है। वातावरण को

खुशहाल एवं स्वस्थ बनाए रखने के लिए हम सब पर बहुत बड़ा दायित्व है। यदि हमने इस ओर क्रदम नहीं बढ़ाए तो चाहे युवा वर्ग है या वृद्धजन कोई भी सुखी नहीं रह सकेगा।

आज विडम्बना है कि परिवार में कोई गुत्थी उलझती है तो मिल-बैठकर उसका समाधान नहीं किया जाता है अपितु अदालतों के माध्यम से निपटाये जाते हैं। ऐसे में हमारा व्यवहार यह होना चाहिए कि बैठकर समझाहट से, नम्रता से झुक कर, प्रेम-स्नेह या दबाव से उसका समाधान किया जाना चाहिए। कहा-सुनी होने पर गांठ पड़ने से पूर्व समझदार को चुप्पी रख लेनी चाहिए। कटु वचनों को प्रसन्नता से पी लेना चाहिए। तभी इंसान का जीवन विकसित होगा, कुंदन की तरह चमकेगा।

मनुष्य की सबसे बड़ी दुर्बलता है कि वह दूसरों के जीवन की ओर दृष्टिपात करता है, पर स्वयं को नहीं देखता। दूसरों को बिना माँगे सलाह देता है, सुझाव देता है जबकि स्वयं के जीवन में चरितार्थ नहीं करता।

हमें स्वयं को देखना चाहिए। दूसरों के घर में क्या है, इसको देखने की बजाय स्वयं के घर को, अपने दायित्वों को नहीं भूलना चाहिए।

दूसरा सो रहा है, जाग रहा है, खा रहा है या नहीं इसकी चिंता नहीं करके, स्वयं को जागृत करना चाहिए। हम निरंतर दूसरों को देखते हुए अपने अमूल्य मानव जीवन को खोते जा रहे हैं। स्वदोष दर्शन करके यदि उसका निराकरण नहीं करेंगे मात्र दूसरों को ही देखते रहेंगे तो अनेक बाधाएँ उपस्थित हो जाएगी।

अधिक सुझाव देने से भी व्यवहार में बाधा आती है। क्योंकि एक तो इससे सामने वाले व्यक्ति की स्वतंत्रता समाप्त होती है। फिर आवश्यक नहीं है कि सभी सुझावों को माना जाए। लेकिन नहीं मानने पर सामने वाले की नाराज़गी प्रकट होने लगती है। यथा — तुम सोचते हो कि जब मेरी बात मान्य नहीं होती है तो मैं क्या जानूँ। इस प्रकार के चिंतन से टकराव प्रारंभ होता है तथा संबंधों की मधुरता दूर होने लगती है, टूटन प्रारंभ होती है।

जब व्यवहार में अपेक्षा भाव अत्यधिक बढ़ जाता है तभी समस्या उत्पन्न

होती है। परिवार एवं समाज परस्पर अपेक्षाओं से जुड़ा हुआ है। परन्तु जो किसी से भी जितनी अपेक्षा रखता है वह व्यक्ति उतना ही दुःखी होता है। माँ-बाप यह चाहते हैं कि हमारी संतान बेटा और बहू हमारी सेवा करे। बेटा-बहू हमारा कहना माने। बेटा-बहू यह चाहते हैं कि माँ-बाप हमारी सम्पूर्ण सुख-सुविधाओं का ध्यान रखें, पर जब यह पूर्ण नहीं होती है तो पहले व्यक्ति के विचारों में टकराहट होती है फिर व्यवहार में परिवर्तन होता है।

यद्यपि चाहे परिवार है या समाज अपेक्षा भाव के बिना चल नहीं सकता। यह एक बंधन है जो एक-दूसरे को बांध कर रखता है परन्तु जब अपेक्षा भाव में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है तो कठिनाई होती है व्यक्ति स्वार्थी हो जाता है। इसलिए संबंधों एवं व्यवहार को मधुर बनाए रखने के लिए त्याग वृत्ति अत्यन्त आवश्यक है।

बहुत पुरानी घटना है। कुछ राहगीर एक ट्रेन में जा रहे थे। एक आदमी जो भी उनके कोच में थे और जिसको सहायता की आवश्यकता थी करता जा रहा था। एक स्टेशन पर गाड़ी रूकी, काफी भीड़ थी। कोच में अनेक राहगीर चढ़ रहे थे उतर रहे थे। रात्रि हो चुकी थी। ट्रेन अपना समय होने पर चलने लगी। एक यात्री जो विकलांग उस आदमी के सामने खड़ा था। उस आदमी ने अपनी चद्दर बिछाई ओर विकलांग को सीट दे दी। जब उनसे पूछा गया कि उन्होंने ऐसा क्यों किया ? तो उसने कहा यह मेरा कर्तव्य है क्योंकि मैं विकलांग होने पर भी यदि खड़ा होता तो यही इच्छा करता कि मुझे भी बैठने के लिए कोई स्थान दे दो। हम तो यह चाहे कि हमें कोई स्थान दे दे और स्वयं नहीं दे तो यह कैसे संभव है ? दूसरे हमारी सेवा करें और हम नहीं करें यह भाव हमारे में नहीं होना चाहिए। अपेक्षा भाव के व्यवहार में संकीर्णता की जगह विशालता होनी चाहिए।

दुनिया में कोई भी क्यारी ऐसी नहीं होगी जिसमें मात्र फूल ही फूल या काँटे ही काँटे हो। फिर हमारे व्यवहार में काँटों की शैय्या क्यों है ? कुछ ऐसे हैं जो सबके लिए फूल ही फूल बिछाते हैं। कुछ फूल और काँटे बिछाते हैं तो कुछ काँटे ही काँटे बिछाते हैं तो विनाश होते देर नहीं लगेगी।

मैंने एक घर में देखा कि घर गंदा पड़ा हुआ था और साफ-सफाई करने

की बजाय बहू सजने संवरने में लगी थी। यह देखकर सास झाड़ू लगाने लगी। बेटे से यह देखा नहीं गया। उसने कहा — लाओ माँ, मैं झाड़ू लगा देता हूँ।

माँ ऊँची आवाज़ में बहू को सुनाते हुए कहती है — अरे रहने दे बेटा, मैं ही लगा देती हूँ। यह सुनकर बहू लिपस्टिक लगाते हुए कहती है — अरे झगड़ते क्यों हो, काम बाँट लो न। एक दिन बेटा झाड़ू लगा देगा और एक दिन माँ लगा देगी। ऐसा व्यवहार दूसरों के दिलों को चोट पहुँचाता है। हम पढ़े-लिखे हैं तो इसका मतलब यह नहीं कि अपने कर्तव्य व सद्व्यवहार को भूल जाए।

वर्तमान युग में नशा करना, होटलों में जाना, जुआ खेलना, अन्तर्जातीय विवाह, फैशन का अंधानुकरण हमारे व्यवहार रहन-सहन का अंग बनता जा रहा है। इनसे बचना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि इनसे जीवन अशांत होता जा रहा है। शांतिमय और सदाचार जीवन हेतु स्वाध्याय, तत्त्वज्ञान, सद्चिंतन की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके लिए हमें भौतिकता की अति से बचना होगा।

एक बालक मेले में अपने पिता की अंगुली पकड़ कर चल रहा था। मेले में लगी दुकान, झूले एवं अन्य वस्तुएँ देखकर यह बहुत आनंदित और खुश हो रहा था। अचानक उसके हाथ से पिता की अंगुली छूट गई। बालक पूरे मेले में घबराया और रोता हुआ घूमता रहा। यद्यपि मेले में अब भी वे वस्तुएँ विद्यमान थी जो पहिले थी, जिन्हें देखकर बालक प्रसन्न हो रहा था, वे वस्तुएँ अब उसे प्रसन्न नहीं कर पा रही थी। पिता की अंगुली मात्र छूटने से वह अत्यधिक दुःखी व घबरा रहा था। इसी प्रकार सभी वैभवादि होते हुए भी धर्म का सहारा धर्म का आश्रय, धर्म की पकड़ छूट गई तो कोई सुखी नहीं रह सकता है। उसे वैभव आदि में सुख नज़र नहीं आएगा। बालक का जो भ्रमण पहले सुख का कारण था फिर दुःख में बदल गया उसी प्रकार जो वैभव पहले सुखमय प्रतीत होता है वही दुःखानुभूति करा देता है। इसलिए धर्म का आश्रय लेकर प्रतिदिन आत्मचिंतन हेतु थोड़ा-सा समय अवश्य निकालना चाहिए। इससे हमारे विचार, आचार और व्यवहार आनन्दयुक्त होते जाएंगे।

रोगों का शरीर और मन पर कुप्रभाव पड़ता है। इसलिए रोगी चिकित्सक

के पास इलाज करवाता है। मन की रुग्णता से व्यवहार एवं विचारों की रुग्णता होना अधिकांशतः संभव है। इसलिए हमारी शिक्षा दीक्षा के साथ हर घर में एक फैमिली प्रशिक्षक होना चाहिए जिसमें बिना किसी खर्च के स्वस्थ मन और स्वस्थ शरीर को प्राप्त किया जा सके। हमें भूल को स्वीकृति देना सीखना होगा। कमियों का प्रचार नहीं करके उसके प्रति सावधान और सजग होना होगा। जिससे पुनरावृत्ति नहीं हो।

एक राजदूत से पूछा गया — ‘आपकी सफलता का राज क्या है?’ उसने कहा — ‘मैं किसी को बुरी बात नहीं कहता। अगर कहता भी हूँ तो जो समझाने का है उतना ही कहता हूँ।’

अमेरिकी राष्ट्रपति अब्राहिम लिंकन ने अपने जीवन की सफलता का अनुभव देते हुए कहा कि तुम किसी की आलोचना, निंदा मत करो ताकि कोई तुम्हारी भी नहीं करे। बात सही है यदि अपने घर की सीढ़ियाँ गंदी हैं तो हम पड़ौसी को सीढ़ियाँ गंदी होने की शिकायत कैसे एवं क्यों करते हैं? उसी प्रकार हमारे मन में गंदगी व्याप्त है तो हम दूसरों को बुरा क्यों कहते हैं? स्वयं को क्यों नहीं सुधारते हैं?

जीवन व्यवहार की सुन्दरता, सरसता, सन्तुलन एवं सामंजस्य बनाए रखने हेतु परम उपयोगी, सही, भूल बताने पर भी हम सबको चुभन होती है, पीड़ा होती है। हमको भूल बताते समय विवाद नहीं करना है। किसी को भूल बताने के लिए सर्वप्रथम अपनी भूल बतानी चाहिए। यह विश्वास दिलाना चाहिए कि जीवन में भूल कौन नहीं करता है। किन्तु भूल को सुधारकर संशोधन करने वाला बड़ा होता है। इससे हम सबकी हीनता की ग्रंथि खुलेगी तथा व्यवहार सुधरेगा।

प्रसिद्ध बंगाली पत्रिका ‘प्रवासी’ के संपादक श्री रामानंद चट्टोपाध्याय एक बार गंगा तट पर पैर फिसलने से नदी में गिरकर तेज बहाव में बहकर डूबने लगे। एक कुशल तैराक युवक ने तुरंत पानी में कूदकर उनका बचा लिया। कुछ दिनों बाद वही युवक उनके कार्यालय में आकर अपनी कुछ कविताओं को ‘प्रवासी’ में छापने की जिद करने लगा। जब रामानंद जी ने कविताएँ निम्न स्तर की पाकर मना किया, तो वह उन्हें खरी-खोटी सुनाते हुए कहने लगा, ‘मैंने

आपकी जान बचाई और आप मेरी कविताएँ भी नहीं छाप सकते ।’

रामानंद जी ने प्रेम से समझाते हुए कहा, ‘संपादक होने के नाते श्रेष्ठ रचनाओं का चयन कर उन्हें पाठकों के सामने लाना मेरा कर्तव्य है । तुम चाहे, तो मुझे फिर से गंगा में डुबो सकते हो । वह मुझे स्वीकार है, परंतु अपने पाठकों के साथ विश्वासघात व छल करना स्वीकार नहीं ।’

कर्तव्य के प्रति उनकी ऐसी अटूट निष्ठा को एवं सत्यप्रियता को देखकर वह युवक भावुक हो उठा । उसने क्षमा माँगते हुए कहा इस बार मैं इनसे भी श्रेष्ठ कविताएँ बनाकर दूँगा । इस तरह का सुव्यवहार युवक के लिए रोशनी का काम कर गया ।

व्यवहार एक सुरक्षा कवच है यह कवच बना रहना चाहिए । इसी में व्यक्ति का, परिवार का, समाज का, राष्ट्र का हित है । व्यवहार मनुष्य के चरित्र का दर्पण है । जो व्यवहार हमारे लिए समस्या बने हमें उन कारणों को ढूँढ़ना है, समाधान करना है । बड़प्पन की धारणा, अहंकार का बोझ, आदेश देने की प्रवृत्ति, अत्यधिक अपेक्षा का बोझ, सुझावों के प्रति स्वीकृति का भाव, रुग्ण व्यक्तित्व, अज्ञानता, शिक्षा का अभाव, कुसंगति, प्रमाद, फैशन, व्यसन आदि अनेक कारण हैं जिनसे हमारे व्यवहार बिगड़ते हैं ।

हमें दूसरों के साथ वही व्यवहार करना चाहिए जैसा हम दूसरों के अपेक्षा रखते हैं । दूसरों के साथ किया गया श्रेष्ठ व्यवहार लौटकर आता है और बुरा व्यवहार भी लौटकर आता है । जहाँ तक हो सके हम दूसरों से श्रेष्ठ व्यवहार करें । बुरा कदापि न करें । श्रेष्ठ व्यवहार हमारी छवि लोगों के दिलों में भगवान तुल्य बना देती है । मैंने देखा, मेरे पास एक सज्जन बैठे थे तभी एक युवा आया, उनके चरणों में पंचांग प्रणाम किया और चला गया । मैंने उनसे पूछा, क्या यह आपका पुत्र है ? उन्होंने कहा, मेरा पुत्र नहीं है, पर मुझे देवता तुल्य मानता है । कारण का जिक्र करते हुए बताया वर्ष 1990 में मैं मध्य रेलवे के इटारसी स्टेशन पर ‘प्लेटफार्म ड्यूटी कम आरक्षण टी.सी.’ पद पर तैनात था । प्लेटफार्म नंबर दो पर कलकत्ता-मुम्बई रेल आने की घोषणा हुई । गाड़ी के प्लेटफार्म पर ठहरते ही 22-24 साल का एक लड़का दौड़ते हुए मेरे पास आया । वह मुझसे बोला कि ‘साहब मैं इलाहबाद से आ रहा हूँ और कुछ देर

पहले ही मेरा बैग चोरी हो गया है।' मैंने उससे पूछा कि बैग में क्या था ? तो उसने कहा कि उसके सभी शैक्षणिक व अन्य प्रमाण पत्र उसमें हैं और वह फाइनल इंटरयू के लिए मुम्बई जा रहा है। वह बहुत घबरा गया था और उसके हाथ पैर काँप रहे थे। गाड़ी प्लेटफॉर्म में सिर्फ पाँच मिनट के लिए ठहरने वाली थी। मैंने स्टेशन मास्टर से बात की तो उन्होंने एफ.आई.आर. दर्ज करा गाड़ी रवाना करने का आदेश दिया। मैंने उस लड़के को वहीं रुकने को कहा। मैंने स्थानीय पुलिस अधिकारियों से बात कर देर रात तक उसका बैग उसे वापस दिला भी दिया। लेकिन अब समस्या उसे मुम्बई भेजने की थी। उसे अगले दिन सुबह किसी भी हालत में मुम्बई पहुँचना था। मैं उसके साथ भोपाल गया और वहाँ से प्लेन से उसे मुम्बई भेजा। उन दिनों प्लेन का किराया ज़्यादा था और मेरी पूरी तनख्वा उसमें खर्च हो गई। सौभाग्य से उस लड़के का इंटरव्यू में नौकरी के लिए चयन हो गया। वह आज भी मुझे देवता के समान याद करता है।

हम भी ऐसे व्यवहार के मालिक बनें जो हमें भी आनंद दे और हमारे जाने के बाद भी लोग उससे प्रेरणा लेते रहें।



विनम्रता की चाबी थामिए, अंकार का हथोड़ा नहीं

अगर आपका जीवन रूखा-सूखा हो गया है तो तुरंत उसकी जड़ों में विनम्रता का पानी देना शुरू कर दीजिए।

वर्तमान युग में जिन गुणों का हास हो रहा है, उनमें एक है — विनम्र भाव। हजारों वर्षों से मानव इस गुण को आत्मसात् किए हुए था पर आज ऐसा प्रतीत होता है कि उसने अपने गुणों की शृंखला में अन्य कतिपय गुणों के साथ 'विनय' को बाहर कर दिया है। उसके दुष्परिणाम उदंडता, अनुशासनहीनता, अपराधवृत्ति, चरित्रहीनता सामने हैं।

एक पुत्र ने अपने पिता से कहा, पिताजी आप विनम्रता को सबसे बड़ा गुण मानते हैं मुझे इसके बारे में प्रैक्टिकल रूप से समझाइए। पिता ने मन में सोचा पुत्र ने बहुत अच्छी बात कही है मुझे इसे समझाना चाहिए। वह अपने पुत्र को लेकर अपने पिताजी के पास जाता है और झुककर आदर के साथ प्रणाम करता है। पुत्र ने यह देखा तो समझा कि पिताजी मात्र प्रणाम के लिए कहते ही नहीं हैं करते भी हैं। फिर पुत्र ने इन दोनों को संघ के अध्यक्ष को नमस्कार करते देखा। संघ अध्यक्ष प्रदेश के मंत्री को, मंत्री मुनि को और मुनि किन्हीं आचार्य

भगवन्त को नमस्कार कर रहे हैं। उसे यह समझते देर नहीं लगी कि विनम्रता के द्वारा हम उन्नति के सोपान की ओर बढ़ सकते हैं और प्रभु पद को प्राप्त कर सकते हैं।

दुर्विचारों का संगठन अत्यन्त खतरनाक है। यह व्यक्ति को परमात्मा तक पहुँचने नहीं देता है। विनम्रता का गुण हमारे जीवन में तभी आ सकेगा जब हम अहम् का विसर्जन करेंगे। 'मैं सब कुछ जानता हूँ' यह मन का दम्भ है। मन के इस दम्भ को छोड़ दो। जीवन में कुछ पाना है, तो अहं से रिक्त होना पड़ेगा। जैसे खाली घड़े में ही पानी आ सकेगा, भरे में नहीं। और याद रखें दुनिया में कोई भी घड़ा ज़िंदगी भर पानी में क्यों न रहे, पर उसमें एक बूँद भी पानी नहीं आएगा वह घड़ा पानी से तभी भर सकता है जब झुकने को तैयार होगा। जब अहंकारी परिवार वालों को भारी लगता है वहीं विनम्र व्यक्ति को पड़ौसी भी प्यार देते हैं।

एक विद्वान संत के पास गया। उसके मन में अपनी डिग्रियों का बड़ा अहंकार था। वह सोचता था कि मैं सब कुछ जानता हूँ। उसने संत से कहा, मैं एम.ए., बी.एड., पी.एच.डी धारक हूँ। मैं बहुत ज्ञानी हूँ, पर जीवन का ज्ञान अधूरा है मैं पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ। संत ने मन में सोचा जब तक इसके मन में अहम् है कि मुझे बहुत ज्ञान है तब तक यह आत्म-सत्य प्राप्त नहीं कर सकता है।

विद्वान् के समक्ष संत ने काफी की एक केटली रखी। विद्वान के हाथ में कप-प्लेट दिया तथा काफी डालने लगा। कप-प्लेट दोनों भर गए काफी नीचे गिरने लगी। विद्वान के पेंट शर्ट खराब हो रहे थे। उन्होंने संत से कहा — यह आप क्या कर रहे हैं? मेरे कपड़े खराब हो गए हैं। मैंने आपसे काफी पिलाने के लिए तो नहीं कहा था।

संत ने विद्वान से कहा — मैं आपके सवाल का जवाब ही तो दे रहा हूँ। काफी कहाँ पिला रहा हूँ। उस विद्वान ने संत से कहा मैं आपकी बात समझ नहीं पाया हूँ। आप कृपा करके कुछ स्पष्ट बताइए।

संत ने कहा — जैसे भरे हुए कप में काफी डालने पर कोई फायदा नहीं हुआ बल्कि आपके वस्त्र खराब हो गए, वैसे ही आपके दिल एवं दिमाग रूपी

कप-प्लेट का खाली होना आवश्यक है अन्यथा मेरा कहा हुआ सत्य बोध आप हृदय में उतार नहीं पाएँगे।

हम चाहे कितनी भी उन्नति कर लें पर हमें अपनी विनम्रता का त्याग नहीं करना चाहिए। मानवता को धारण करने के लिए विनम्रता का गुण अत्यधिक सहायक है। मानव कहलाना और उसके योग्य होना दोनों में काफ़ी अन्तर है।

एक कमिश्नर एक जमींदार के घर चैकिंग करने जाते हैं। वहाँ सबकी खुशहाली के समाचार ज्ञात करके कहते हैं कि आपको घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम आपके घर की जाँच करने आए हैं, पूर्ण तलाशी ली। एक दो कमी थी वो ठीक करने का कहकर जमींदार को प्रणाम करके कार से जाने लगे। जमींदार कमिश्नर के इस विनम्र व्यवहार से बहुत प्रभावित हुआ। उसने कहा — मैं साठ वर्ष का हूँ। न तो मैं इतना विनम्र हूँ क्योंकि मेरे में भी जमींदार का अहं है और न ही मैंने इतने बड़े पद के 'नर' को विनम्र देखा। आज तक मैं डॉक्टर, मिनिस्टर, कलेक्टर आदि सभी से मिला हूँ वे तो 'टर-टर' ही करते रहते हैं। परन्तु यह कमिश्नर 'नर' निकला। नर में लघुता होनी चाहिए। लघुता में ही विनम्रता है।

विणएव णरो गंधेणं, सोमयाइ रयणियरो।

महर रसेण अमयं, जणपियत्तं लहद भुवणे ॥

जैसे सुगन्ध के कारण चन्दन, सौम्यता के कारण चन्द्रमा और मधुरता के कारण सुधा विश्व प्रिय है, ऐसे ही विनय के कारण नर लोक प्रिय बनता है।

विनम्रता के अभाव में धर्म की कल्पना कैसे संभव है? देवाधिदेव परमात्मा महावीर स्वामी ने कहा कि 'विनयमूलो धम्मो।' धर्म का मूल विनय है। जैसे मूल के बिना वृक्ष की कल्पना नहीं की जा सकती है। वैसे ही विनय के बिना धर्म की कल्पना करना व्यर्थ है। विनय धर्म का प्राण है। विनय वृत्ति को अपना लिया जाए तो धर्म स्वतः हो जाएगा।

जब जीवन में विनय का समावेश हो जाता है तो क्षमा, मार्दव, आर्जव इत्यादि सभी का समावेश स्वतः हो जाता है। यदि विनय नहीं है तो अन्य क्षेत्र भी सूखे रह जाते हैं।

विनम्रता एक ऐसा गुण है जो सहज होते हुए व्यवहार जगत में विशिष्ट गुण माना जाता है। इस गुण के अभाव में व्यक्ति किसी के साथ आसानी से सामञ्जस्य नहीं बिठा सकता है। विवाद एवं बहसबाजी से बचने हेतु विनम्रता अमोघ अस्त्र है। किसी का बहुत ही सुन्दर कथन है —

विवाद करने वाला उद्वंड व्यक्ति अपने हाथों अपने उद्देश्यों का एकसीडेंट करता है। चलते-चलते वह व्यक्ति स्वयं की दिशा को बदल लेता है, पर विनम्र व्यक्ति प्रकृति के हर नियम का सम्मान करता जाता है।

झुकता वही है, जिसमें कुछ जान है।
 अकड़पन तो खास, मुर्दे की पहचान है।
 अकड़ने से नाहक, तेरा टूटेगा सर।
 अगर दर है नीचा, तो झुककर गुजर॥

हम देखते हैं कि चलते-चलते हमारा सिर फूट जाता है तो यह कहते हैं कि दरवाजा बहुत छोटा था इसलिए सिर फूट गया। सिर तो इसलिए फूटा क्योंकि हम झुककर चलने के आदी नहीं हैं। सच्चाई तो यह है विनय गुण के सामने बड़े-बड़े क्रूर हृदय भी प्रभावित होकर परिवर्तित हो जाते हैं।

मेरा विश्वास है कि मानव-जीवन में माता-पिता द्वारा प्रदत्त संस्कार स्थायी होते हैं। यदि माता-पिता के दिए हुए संस्कारों के साथ दिल में धर्म स्थित है तो कहीं भी जाइए, वे संस्कार नष्ट नहीं होंगे। माता-पिता से प्राप्त संस्कार मृत्यु के अंतिम क्षण तक विद्यमान रहते हैं।

एक विधवा अत्यन्त गरीब थी। उसके एक पुत्र था। उस महिला ने अनेक कष्ट उठाकर सिलाई करके, मेहनत-मजदूरी करके पुत्र को पढ़ा-लिखाकर योग्य बनाया। पुत्र भी बुद्धिमान एवं होशियार था। अपनी योग्यता से वह सेना में भर्ती हो गया। कुछ समय पश्चात् वह एक बहुत बड़ा योग्य अधिकारी बन गया। माँ ने उसे सब कुछ सिखाया पर विनम्रता नहीं सिखायी। वह यह मानता था कि जो कुछ हूँ, वह मैं ही हूँ, दूसरा कुछ नहीं, सब मुझसे छोटे हैं।

एक दिन वह कहीं जा रहा था। रास्ते में बहुत भीड़ थी। उसे पीछे से हल्का-सा धक्का लग गया। क्रोध में आग बबूला होकर वह सामने वाले को मारने लगा। भीड़ एकत्रित हो गई। सैन्य अधिकारी तो वह था ही और फिर

उसकी मार से दूसरा व्यक्ति लहुलूहान हो गया। वह एक पैर से उस घायल व्यक्ति को लात मारता है, वहीं दूसरा पैर सड़क पर पड़े केले के छिलके पर आने से वह गिर जाता है। उसका पाँव टूट जाता है। डॉक्टर चिकित्सा करते हैं पर अन्ततः पाँव ठीक नहीं होने के कारण काट दिया जाता है। वह अपने घर में पड़ा रहता है। पैर नहीं होने से वह अपने को असहाय महसूस करने लगता है।

एक दिन उस सैन्य अधिकारी ने बहुत ही मायूस होकर अपनी माँ से कहा है कि माँ तूने मुझे सब कुछ सिखाया पर यह नहीं सिखाया कि दुरभिमान नहीं करना चाहिए। विनम्र होना चाहिए। अब मुझे लग रहा है कि एक सामान्य इंसान होकर भी मैं जगत में ऊँचाई पर पहुँच रहा था। लेकिन विनम्र नहीं होने से व्यावहारिक जगत में मैं अहंकारवश हरेक से लड़ पड़ता था। इसलिए मेरी यह स्थिति हुई है। वास्तव में 'मैं' बहुत छोटा है और दुनिया बहुत बड़ी है। बच्चों के लिए माता-पिता द्वारा दिए गए संस्कार बड़े ही महत्त्वपूर्ण हुआ करते हैं।

परिवार से विनम्रता, सदाशयता चारित्रिक दृढ़ता आदि संस्कार प्राप्त करके उनका पूर्णरूपेण पालन करने पर ही बच्चा आदर्श नागरिक बन सकता है। जो जितना ज्ञानी होगा वह उतना ही विनम्र भी होगा। पेड़ पर अधिक फल लगते हैं तो पेड़ झुक जाता है। अकड़कर रहने वाला टूट पेड़ सदा फल विहीन रहता है। मानव यदि मानवीयता के साथ जीता है तो वह प्रभु तुल्य है अन्यथा वह मनुष्य होते हुए पशु तुल्य है।

सेवा-भाव, विनम्रता, चारित्रिक दृढ़ता एवं निर्व्यसनता के साथ जीवन व्यतीत करना ही मानव जीवन की सार्थकता है।

चन्द्रयश मुनि दीक्षा ग्रहण करने से एक दिन पूर्व अपने बहनोई के साथ आचार्य रुद्रदत्तमुनि के दर्शन हेतु गए। बहनोई ने वहाँ मजाक में आचार्य श्री से कहा — हमारे साले चन्द्रयश जी आपके शिष्य बनने के योग्य हैं।

आचार्य रुद्रदत्त अत्यन्त रौद्र प्रकृति के थे। उन्होंने बहनोई की बात सुनते ही मुट्ठी भर राख चन्द्रयश के सिर पर मली और केशों का लोच कर दिया। चन्द्रयश ने किसी भी प्रकार का विरोध किए बिना दीक्षा को अंगीकार किया तथा मुनि-वेश धारण किया।

चन्द्रयश के मन में एकाएक थोड़ी देर में विचार हुआ कि मुझे साधु बना दिए जाने का समाचार सुनकर मेरे परिवार वाले क्रोधित होंगे तथा आचार्यश्री को तंग करेंगे। ऐसा सोचकर उसने आचार्य से विनम्र शब्दों में कहा कि हम यहाँ से अभी विहार कर दें तो अधिक उचित होगा।

आचार्यश्री ने क्रोधावेश में कहा — तुम्हें दिखाई नहीं देता है मैं चल नहीं सकता हूँ। शिष्य ने कहा — मैं आपको कंधों पर ले चलूँगा। यह सुनकर आचार्य श्री चलने को तैयार हो गए। शाम का समय था। घनघोर घटा छायी हुई थी। सूर्यास्त से पूर्व ही अंधेरा-सा होने लग गया, रास्ता साफ दिखाई नहीं दे रहा था। दीक्षा का प्रथम दिवस, नंगे पाँव मुनि अपने कंधे पर आचार्यश्री को लेकर आगे बढ़ते जा रहे थे। कंकर, पत्थर आने पर मुनि ज़रा से डगमगाते तो आचार्य श्री क्रोधित हो जाते-अंधे हो क्या? देखकर नहीं चलते। तुम्हारे हिलने से मुझे कितनी तकलीफ होती है।

मुनि चन्द्रयश मन ही मन पश्चाताप करते, अरे मैं कितना पापी हूँ। मेरे कारण गुरुदेव को कितनी तकलीफ हो रही है। वे चलते-चलते पुनः-पुनः अपने गुरुवर से क्षमापना करते और विनय के इन भावों से उनके परिणामों में इतनी उच्चता का समावेश हुआ कि उसी समय उनको केवल ज्ञान हो गया। अब उन्हें अंधेरे में भी सब कुछ दिखाई दे रहा था। अचानक चले की चाल में अंतर आने से तकलीफ कम होने के कारण आचार्य श्री ने शांत भाव से पूछा, अब तो तुम ऐसे चल रहे हो जैसे प्रकाश में चलते हो, आखिर क्या बात है? शिष्य ने कहा —

गुरुदेव आपकी कृपा दृष्टि के कारण अंधेरे में भी सब कुछ दिखाई देने लगा है। आचार्यश्री चौंके। उन्हें सब कुछ समझ में आ गया। वे मन ही मन प्रायश्चित्त करने लगे। उन्होंने सोचा धिक्कार है मुझे। अज्ञानता के कारण मैंने केवलज्ञानी मुनि की आत्मा को बहुत दुःख पहुँचाया है। उनका पश्चाताप अत्यधिक बढ़ता गया और उनको भी केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई।

इस प्रकार विनय गुण के कारण मुनि चन्द्रयश का भी तथा गुरु का भी आत्म कल्याण हुआ।

भगवान महावीर ने विनम्रता का महत्त्व बताते हुए कहा —

‘विणओ सासणे मूलं, विणओ संजओ भवे।
विणयाओ विप्पमुक्कस्स, कओ धम्मो कओ तवो ॥

अर्थात् - विनय जिन शासन का मूल है। संयम तथा तप से विनित बनना चाहिए। जो विनय से रहित है, उसका कैसा धर्म और कैसा तप।

बुद्ध ने विनम्रता को ध्यान बताया क्योंकि इसके द्वारा सत्य से साक्षात्कार किया जा सकता है।

महात्मा गाँधी ने विनम्रता को अहिंसा का रूप दिया। हम विनम्र होकर ही अहिंसक और ध्यानी बन सकते हैं।

सुकरात के मतानुसार सफलता का स्वर्ण सूत्र विनम्रता है। उन्होंने कहा कि यदि आप दुनिया को वश में करना चाहते हो तो स्वयं को वश में करो और इसके लिए जरूरी है सर्वप्रथम विनम्र बनो। यह सबसे बड़ा वशीकरण मंत्र है। जो कार्य आप लाखों रुपये खर्च करने पर भी नहीं करवा सकते हैं वह आप विनम्रता के बोल से करवा सकते हैं। यदि विनम्रता नहीं है अहं है जिसके कारण बड़े-बड़े विद्वान, धनाढ्य लोग भी असफलता के कगार पर पहुँच जाते हैं। कठोरता से एक बार कार्य में अवरोध उत्पन्न हो सकता है पर विनम्रता से पैदा हुआ अवरोध भी दूर होता है।

विनम्रता के साथ हमारे विचारों में निष्कंपता होनी चाहिए। जो अन्तर्मन से पवित्र होता है वही लम्बे समय तक विनम्रता, शिष्टता का जीवन व्यतीत कर सकता है। प्रशंसा, अनुमोदन, समर्थन, प्रोत्साहन ये विनम्रता के समीप रहते हैं। विनय मन की दासता नहीं है अपितु जीवन की ऊँचाई है। इसलिए हमारा उसमें सहज भाव प्रकट होना चाहिए।

तपस्या के बारह प्रकारों में विनम्रता, वाक् नियंत्रण, अनुशासन और आचार इन चारों प्रकारों के अनुसार विनय के सात भेद बताए गए हैं, जिसमें लोकोपचार विनय को भी स्थान दिया गया है। कारण स्पष्ट है कि व्यवहार के बिना आचार नहीं चलता है। संघ और संस्थाओं को यही गुण जीवन व जीवंतता प्रदान करता है।

एक प्रश्न उपस्थित होता है कि ध्यानी और विनयी में क्या अन्तर है। जो स्वयं के मन की आराधना करता है वह ध्यानी है। जो सबके मन की आराधना करता है, वह विनयी है।

समुद्र जैसा गाम्भीर्य और हिमालय जैसी अचलता सभी में होनी चाहिए। समुद्र में चाहे जितनी भी नदिया अपने जल को डालती है पर समुद्र कभी छलकता नहीं है। अपने अन्दर सभी को समाविष्ट कर लेता है। उसी प्रकार विनयी व्यक्ति कड़वे-मीठे सभी अनुभवों को अपने भीतर समाविष्ट कर लेता है।

जैसे समुद्र में रत्न और कंकर के लिए समान स्थान है वैसे ही विनयी व्यक्ति के मन में सज्जन, दुर्जन के प्रति समान स्थान होना चाहिए।

ईर्ष्या, द्वेष, मत्सर, अहंकार आदि ये क्षुद्र वृत्तियाँ हैं इन्हें श्रावक को अपने मन से दूर कर देना चाहिए तभी विनयता का गुण आएगा। अहंकार विनाश का कारण है। हनुमान में नम्रता थी इसलिए उनका बल भी अमर बना। सागर के किनारे सभी वानर बैठे हुए थे। लंका में कौन जाए इसकी चर्चा चल रही थी। परन्तु हनुमान एकांत में बैठकर राम-नाम का जाप कर रहे थे। जब हनुमान से पूछा गया तो उन्होंने कहा — ‘समुद्र को लांघ कर लंका में जाने की मेरी हिम्मत नहीं है, पर राम का आशीर्वाद होगा तो मैं जा सकूँगा।’

हनुमान जब समुद्र को लांघ कर लंका में पहुँचे तो उन्होंने यह नहीं कहा कि अपने बाहुबल से यहाँ आ सका हूँ परन्तु उन्होंने यही कहा कि मैं राम के बल से ही यहाँ आ सका हूँ।

इस प्रकार हनुमान में बल होने पर भी उनकी निरभिमानी वृत्ति से ही उनका बल अजर-अमर बन सका है। सभी में इसी प्रकार की निरभिमानी होनी चाहिए। अहंकार की क्षुद्र वृत्ति का हृदय में स्पर्श नहीं होने देना चाहिए।

विनयी व्यक्ति में अहंकार की क्षुद्रवृत्ति समाप्त हो जाती है। इस प्रकार की वृत्तियों के समाप्त होने पर ही मानव विनयी होता है। जैसे पैर में कांटा लग जाए तो एक क़दम भी आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। वैसे ही जब तक हृदय में क्षुद्रवृत्तियों के कांटे भरे हों तब तक प्रगतिशील जीवन नहीं बनाया जा सकता है।

जिस प्रकार दूध में मक्खी गिर जाने पर मानव उसे शीघ्रता से बाहर निकाल कर फेंक देता है। उसी प्रकार मन में क्षुद्रवृत्तियों के आ जाने पर उसे शीघ्रता से निकाल देना चाहिए। क्षुद्र वृत्ति से रहित मन के द्वारा ही हमारे जीवन का कल्याण किया जा सकता है।

हमें अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाने हेतु जागना ज़रूरी है। जागे बिना विवेक जागृत नहीं होगा और विवेक के बिना जीवन की उपयोगिता सिद्ध नहीं होगी। बदलाव या सुधार का दूसरा नाम सम्यक् जागरण है। जब तक दीपक रहता है अंधकार उसके पास नहीं आता है। जागृत और सजग जीवन में बुराइयाँ प्रवेश नहीं कर सकती हैं।

जागने से तात्पर्य है घर में लौट आना। ऐसे घर में जहाँ सुख हो, शांति हो।



ऐसे सुधारें अंतर्दृष्टि

दुनिया काली तभी तक नज़र आती है जब तक
सफेद चश्मा न पहना जाए।

कॉलेज में एक कम्पिटिशन हुआ जिसमें छात्रों के एक समूह को दुनिया के वर्तमान सात अजूबों के नामों के आगे टिक लगाने के लिए एक सूची सौंपी गयी। हालांकि छात्रों में इस सिलसिले में कई नामों पर असहमति देखी गई, मगर निम्न स्मारकों को इन छात्रों के सर्वाधिक मत मिले-मिस्र के पिरामिड, ताजमहल, ग्रैंड कैन्यन, पनामा नहर, एंपायर स्टेट बिल्डिंग, सेंट पीटर्स बैसिलिका और चीन की दीवार।

विभिन्न छात्रों के मतों को एकत्रित करने के दौरान टीचर ने पाया कि एक छात्रा अभी भी अपनी सूची तैयार करने में जुटी हुई थी। टीचर ने उससे पूछा कि दुनिया के सात आश्चर्यों पर टिक लगाने के लिए उसे जो सूची प्रदान की गई थी, उसको लेकर कोई समस्या है? छात्रा ने तत्काल ज़वाब दिया — ‘हाँ, टीचर मेरी थोड़ी समस्या है, क्योंकि प्रदत्त नामों की सूची को लेकर मैं दुविधा में फँस गई हूँ। इस ज़िंदगी में इतनी ख़ूबसूरत चीज़ें हैं कि महज सात अजूबों

का नाम तय करना मेरे लिए बेहद मुश्किल हो रहा है ।

इस पर टीचर ने कहा — मुझे अपनी समस्या बताओ शायद मैं तुम्हारी मदद कर पाऊँ। छात्रा ने हिचकिचाते हुए बताया कि मेरी नज़र में दुनिया के सात आश्चर्य हैं : ऐसी ख़ूबसूरत चीज़ों को देखना जिनकी हमेशा हम उपेक्षा करते रहते हैं, हर एक को प्यारी लगने वाली बातें सुनना, लोगों के जीवन में ढेर सारी खुशियों की बरसात करना, ऐसे लोगों को प्रेमपूर्ण स्पर्श देना जो मानवीयता के स्पर्श के मोहताज रहे हैं, अपने प्रियजनों के सुख-दुख में शरीक होना और उनका अहसास करना, हर मौके-बे-मौके खुलकर हँसना और प्रेम से महरूम लोगों को प्रेम से लबालब करना ।

छात्रा की बातों को पूरा क्लास-रूम ऐसे सुन रहा था जैसे लगता था कि मानों वहाँ कोई है ही नहीं। उसकी बात ख़त्म होने के बाद भी कुछ पलों तक पूरे क्लास-रूम में स्तब्धता छाई रही। सच बात है कि जिन चीज़ों की हम यँ ही साधारण और महत्वहीन समझते हुए उपेक्षा करते जाते हैं, पता चलता है कि असली ख़ूबसूरती उनमें ही थी। सचमुच वे कितनी आश्चर्य से भरी हुई थीं।

जब व्यक्ति की गुण ग्राहक अंतर्दृष्टि खुलती है तभी उसे जीवन का सत्य प्राप्त होता है। हमारी दृष्टि केवल बाहर रहेगी तो सुख और सुविधाएँ तो हमारे हाथ में आ जाएँगी, पर जीवन की समृद्धि हाथों से छिटक जाएगी। दुनिया की बहुमूल्य और ख़ूबसूरत चीज़ों को मानव द्वारा न तो निर्मित किया जा सकता है और न ही कहीं से लाया जा सकता है।

मनुष्य के जीवन में समृद्धि हो पर धर्म एवं शांति नहीं हो तो वह जीवन शुष्क है, प्रयोजन रहित और निरर्थक है। धर्म एवं शांतिमय जीवन के लिए सद्चित्तन का होना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है जो चिंतन शून्य हो। हाँ चिंतन की राह, चिंतन की दिशा भिन्न-भिन्न हो सकती है और वह भिन्न-भिन्न होती भी है। सबका एक ही ध्येय होता है कि येन केन प्रकारेण व्यक्ति शांति को प्राप्त करे।

जब मनुष्य अपने दोषों को शांत करता है, उनका शमन करता है तब अन्तरंग से शांति प्रकट होती है। बाहर कहीं भी शांति नहीं है। शांति स्वयं में है, अपने में है, इसलिए स्वयं को देखना-खोजना ही शांति को पाने का सरल

उपाय है।

एक गाँव में दो परिवार के दस व्यक्ति अपना सामान पास के गाँव में बेचने गए। लौटते समय रास्ते में पड़ने वाली नदी अत्यधिक वेग में थी। वहाँ कोई नाव नहीं थी, पर सभी तैरने में कुशल थे। उन्होंने निश्चय किया कि तैरकर ही नदी के उस किनारे सब पहुँचेंगे। सब के पहुँचने पर इकट्ठे ही गाँव जाएँगे। सब नदी के पास पहुँचे, दूसरे किनारे पर पहुँचने पर मुखिया ने सबको गिनना प्रारंभ किया। वह बार-बार नौ तक गिनता। कोई भी दसवें व्यक्ति को नहीं गिन पा रहा था। चार-पाँच लोगों के द्वारा गिनने पर भी जब दस की गिनती नहीं हो पाई तो उन्होंने सोचा एक साथी रह गया वह नदी में डूब गया है। शोक में उन्होंने रोना प्रारंभ कर दिया। उन्हें जोर-जोर से रोते देखकर एक राहगीर वहाँ रुका और रोने का कारण पूछा। राहगीर ने सबको गिनना शुरू किया वे पूरे दस थे। यह सुनकर सभी को अपनी भूल का अहसास हुआ कि प्रत्येक गिनने वाला व्यक्ति सबको गिन रहा था, पर अपने-आपको नहीं गिन रहा था। सबको देख रहा था, पर स्वयं को ही नहीं देख पा रहा था।

हम दूसरों के दोषों को देखने में लग रहे हैं अपने लिए नहीं सोचते, अपने दोषों को नहीं देखते हैं। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं की ओर देखे, स्वयं को पहचाने। स्वयं को ढूँढ़े। दूसरों के दोषों को, अवगुणों को मत देखो। स्वयं के अवगुणों को देखो। देखने हैं तो दूसरों के गुणों को देखो। गुणानुरागी बनो। गुणानुरागी होने से गुण हमारी तरफ आकर्षित होंगे।

जैसे पेट भरने के लिए अन्न की आवश्यकता होती है। बनाकर कोई दे देगा, परोस कोई देगा, खिला भी कोई देगा, पर स्वयं को चबाना होगा, पचाना होगा, तभी रक्त बनेगा। यदि आप कहें कि मैं भोजन नहीं करूँगा मेरे बदले अन्य कोई भोजन करे और पेट मेरा भर जाए तो काम नहीं चलेगा। क्योंकि जो व्यक्ति भोजन करेगा उसी का पेट भरेगा, स्वयं जितने, जिस प्रकार के अन्न का उपभोग करेंगे उसी के अनुसार फल की प्राप्ति होगी। इसी प्रकार हमें स्वयं को ही अपने दोषों को देखना होगा। उसमें सुधार करना होगा। हमें भली भाँति हेय-उपादेय को, ग्राह्य-त्याज्य को जानना होगा। अपनी दृष्टि को बदलना होगा।

एक व्यक्ति ने मुझे बताया कि वह एक ढाबे से खाना खाकर निकल रहा था कि पास में खड़ा एक बूढ़ा भिखारी हाथ फैलाकर खाना माँगने लगा। उसने ढाबे से खाना लेकर उस बूढ़े को दे दिया। भिखारी ने खाना शुरू भी नहीं किया था कि वहाँ दो बच्चे आए और ढाबे से निकलने वाले लोगों से खाना माँगने लगे। लेकिन सभी उन्हें दुत्कार रहे थे। उस भिखारी ने उन बच्चों को अपने पास बुलाया और अपना खाना उन्हें दे दिया। वह भी वहाँ खड़ा सब कुछ देख रहा था। उसने बूढ़े से पूछा — 'आपने खाना तो उन्हें दे दिया अब आप क्या खाएँगे।' तो बूढ़े ने जवाब दिया — 'मुझे तो तुम्हारे जैसा कोई और भी खिला देगा और एक दिन खाना नहीं भी मिलेगा तो कोई बात नहीं। लेकिन मेरे सामने छोटे बच्चे भूखे रहें और मैं खाना खाऊँ यह मुझसे देखा नहीं जाता।' भिखारी होकर भी व्यक्ति अपनी गुणदृष्टि से महान बन सकता है।

जो व्यक्ति निःस्वार्थ भाव से सेवा करता है, उसके कार्य की हम प्रशंसा करें, उस कार्य से अनुराग रखें तो निश्चित रूप से हमारे विचारों में परिवर्तन होगा। हमारे क्रदम उस ओर अग्रसर होंगे। इसके विपरीत जो पैसा लेकर, रिश्वत लेकर कार्य करते हैं, हम यदि उनके कार्यों की प्रशंसा करेंगे तो हमारे जीवन में भी इस प्रकार के अवगुण विकसित होंगे। हमें निरंतर सद्गुणों की ही प्रशंसा करनी चाहिए, गुणवानों के प्रति अनुराग रखना चाहिए।

किसी व्यक्ति से झगड़ा हो जाने पर यदि आप उस पर कीचड़ उछालोगे तो यह याद रखिए पहिले आपके हाथ-पाँव गंदे होंगे। आवश्यक नहीं है कीचड़ वहाँ तक उछल कर चला जाए, उस व्यक्ति पर कोई असर पड़े, न पड़े पर आपके हाथ-पैर तो गंदे हो ही जाएँगे। गली-मुहल्ले में झाड़ू लगाया पर अपने घर में नहीं लगाया तो स्वयं का घर तो गंदा ही रहेगा। इसलिए अपने ही घर से सफाई प्रारंभ करनी होगी। पहले स्वयं के दोष स्वयं में पहचानने होंगे और उनसे दूर होने का प्रयास करना होगा।

• दोष-दृष्टि काली नागिन है, जिससे हृदय कलुषित होता है। गुण-दृष्टि मोक्ष की सोपान है इससे हृदय निर्मल बनता है। दोष-दृष्टि सदा दूसरों में अवगुण देखती है और गुण-दृष्टि गुणों को। आदमी आखिर वैसा ही बनता है जैसा वह देखता या सोचता है। अक्सर आदमी दूसरों को बदलना चाहता है।

दूसरों को बदलना हमारे हाथ में नहीं है, पर स्वयं को बदलना स्वयं के हाथों में है। खुद को बदलना दूसरों से प्राप्त होने वाली अपेक्षा की बजाय उपेक्षा से मुक्त होने का सरल उपक्रम है।

एक करोड़पति आँख के दर्द से काफ़ी परेशान था। उसने बेहताश औषधियाँ निगलीं और सैकड़ों की संख्या में इंजेक्शन लिये लेकिन स्थिति ढाक के तीन पात की तरह ही रही। आखिर उसने काफ़ी मशहूर एक भिक्षु की शरण ली, भिक्षु ने उसकी समस्या को बारीकी से समझकर उसे हरे रंग पर अपना ध्यान केन्द्रित करने की सलाह दी। सलाह पर करोड़पति ने पेंटरों से कहा कि वे हर उस चीज़ को हरे रंग में रंग डालें, जिनके कामकाज़ और घूमने-फिरने के दौरान उसकी नज़र में आने की संभावना हो।

कुछ दिनों बाद जब वह भिक्षु करोड़पति मिलने आया तो उसके नौकर हरे पेंट से भरी बाल्टी दौड़े और भिक्षु के ऊपर उड़ेल दिया। ऐसा करने की वज़ह जानकर भिक्षु अपनी हँसी चाहकर भी नहीं रोक पाया। उसने उस अमीर आदमी से कहा — अगर तुम इतना तामझाम और ऊटपटांग उपाय करने की बजाय महज हरा चश्मा पहन लेते तो दीवारों, पेड़-पौधों और घर के दूसरे बर्तनों व सामानों को हरे रंग में रंगने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। तुम दुनिया को तो हरे रंग में पेंट नहीं कर सकते। हमें सिर्फ अपनी दृष्टि में बदलाव करने की ज़रूरत है, फिर दुनिया उसी रंग की दिखने लगती है।

हमें स्वदोष दर्शन, पर दोष वर्जन करना है। स्वयं के दोषों के दर्शन एवं उनके त्याग से ही हमें शांति मिलेगी। हमारे आस-पास सभी दोष रहित है पर हमारे में दोष है तो शांति प्राप्त नहीं होगी। हमें स्वयं को देखने के लिए पहले साधनों का प्रयोग करना होगा। बहिर्मुखी जीवन जीने की बजाय अन्तर्मुखी बनने का प्रयास करना होगा। चाहे कितनी ही बाधाएँ आए हमें पीछे नहीं मुड़ना है। हमें मंजिल तक पहुँचे बिना, इष्ट तक पहुँचने से पूर्व तक साधन का त्याग नहीं करना है। हम एक बच्चे को खड़ा होना चलना सिखाते हैं, पर बच्चा गिर जाता है तो भी हम उसे खड़ा करके चलाना सिखाते हैं। यह कहते हैं कि परवाह मत करो। गिरने से मज़बूत होगा। यदि सिखाएँगे नहीं तो वह खड़ा कैसे होगा। जब व्यवहार में हम बाधा आने पर, अनेक संकटों के उपस्थित होने पर

भी अपने कार्य को नहीं छोड़ते हैं तो सफल हो जाते हैं। स्वदोष दर्शन में जो प्रारंभ में मन अशांत होता है, हलचल होती है तो हमें उसका त्याग नहीं करना चाहिए, दोष-दर्शन से उत्पन्न वह अशांति हमें अन्ततोगत्वा शांति की ओर ले जाएगी। क्योंकि हमने अपने दोष को देख लिया, स्वीकार कर लिया तो पलभर की भले ही अशांति मिले, पर उसके बाद तो शांति ही मिलेगी।

मनुष्य के जीवन में जब तक अनुभव नहीं हो तब तक लाभ नहीं है मात्र शास्त्रों के अध्ययन से हमें अनुभव प्राप्त नहीं होगा। शास्त्र ज्ञान से मुक्ति नहीं है अनुभव ज्ञान से मुक्ति होती है क्योंकि शास्त्रों से हमें मार्ग मिलता है और अनुभव से हमें मर्म प्राप्त होता है। शास्त्रों से जीवन निर्माणकारी शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं पर आगे बढ़ने के लिए अनुभव सहायक होगा। हम यदि रास्ते में पड़े पत्थर से ठोकर खा जाते हैं तो पुनः ठोकर नहीं लगे हमें इस प्रकार की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। हमारे जीवन में अनेक बुराइयाँ, दोष-अवगुण हैं उनके शमन के लिए शास्त्रज्ञान एवं सुशिक्षा साधन है, मार्गदर्शक है, आदर्श भी है।

जिस प्रकार पुष्प-फल-पत्ते से रहित वृक्ष का कोई मूल्य नहीं है लोग उसे टूँठ कहते हैं उसी प्रकार सम्यक् दर्शन-ज्ञान-चारित्र के बिना आत्मा का कोई मूल्य नहीं है। पक्षी है पर उसके पंख नहीं हैं तो वह उड़ान नहीं भर सकता। मकान में टूटी ईंट हो तो उन्हें हटाया जाता है उसी प्रकार जीवन में एक-एक गुण को ग्रहण करेंगे, एक-एक दोष का दर्शन करके उसे हटाते जाएँगे तो जीवन भी अपनी ऊँचाइयों तक पहुँचेगा, उन्नतिशील होगा। गुणों से ही मानव जीवन उत्तम होता है। इसके लिए हमें क्षण भर के लिए ही सही पर सत्पुरुषों की संगति अवश्य करनी चाहिए। उनके गुणों का दर्शन करना चाहिए। जीवन में कोई-न-कोई नियम इस तरह का अवश्य होना चाहिए ताकि गुणों का विस्तार होता रहे।

मन ! यदि तुम बुद्धि कौशल पाने के लिए, आपदाओं को हटाने के लिए, सन्मार्ग पर चलने के लिए, कीर्ति पाने के लिए, असाधुता को दबाने के लिए, धर्म का सेवन करने के लिए, पाप के परिणाम को रोकने के लिए और स्वर्ग मोक्ष की सौख्य श्री का संचय करना चाहते हो तो गुणवानों की संगति करो। जैसे चन्द्रहीन आकाश शोभित नहीं होता वैसे गुणहीन नर भी शोभा नहीं पाता है।

यदि उभय लोक में सुख पाना है तो गुण को ग्रहण करें। जहाँ किसी की

दोष की बात आए तो मौन हो जाना चाहिए। जीवन बहुत जटिल है। यदि दोष की बात में आप बोलेंगे तो आप शब्दों के गुलाम हो जाएँगे। सुनने वाले आपकी बात के अनेक अर्थ निकालेंगे। आमतौर पर यह देखा जाता है कि किसी की प्रशंसा करनी हो तो पाँच-दस मिनट में हमारी जिह्वा थक जाती है और यदि बुराई करनी हो तो घंटों व्यतीत हो जाते हैं पर थकती नहीं है। जबकि प्रत्येक में अच्छाई और बुराई दोनों होते हैं। जड़ और चेतन दोनों में अच्छाई रहती है, पर पहचानने की दृष्टि मनुष्य में अवश्य होनी चाहिए। चतुर शिल्पकार पत्थर के टुकड़े में भी देवी-देवता और राजा-रानियों की आकृतियाँ देख सकता है। इसी प्रकार पर गुण दर्शन की वृत्ति हो तो सभी में गुण देख सकते हैं और प्राप्त कर सकते हैं।

दूध और पानी मिश्रित कटोरे के पास राजहंस आता है तो मात्र दूध ही ग्रहण करता है। उसमें मिले पानी को छोड़ देता है। लेकिन किसी व्यक्ति का स्वभाव ही ऐसा होता है कि वह दूसरों की भूलों और त्रुटियों को ही ढूँढ़ता रहता है। जैसे चींटी सर्वत्र छिद्र ही ढूँढ़ती है। यह छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति मनुष्यों की नहीं होनी चाहिए। उनकी दृष्टि तो गुणान्वेषण की होनी चाहिए।

एक बार श्रीकृष्ण भगवान तीर्थंकर नेमिनाथ के दर्शन करने जा रहे थे। यादव परिवार भी उनके साथ था। रास्ते में एक कुतिया थी। उसके शरीर से रक्त, पीप बह रही थी। दुर्गंध आ रही थी। सभी मुँह फेर कर नाक पर रुमाल रखकर आगे की ओर बढ़ रहे थे, पर कर्मयोगी श्रीकृष्ण ने कहा — अहा! इसके दाँत कितने सुन्दर हैं। सड़े हुए दुर्गंध युक्त शरीर पर उन्होंने ध्यान नहीं देकर उसके दाँतों की प्रशंसा की। इस प्रकार की गुण ग्राहकता हमारे भी होनी चाहिए। हमें यदि देखना है तो स्वयं के दोषों को देखना चाहिए अपने गुणों को नहीं। दोषों को देखना शुरू कर दिया तो हम आगे बढ़ सकेंगे और गुणों को देखेंगे तो मन-ही-मन स्वयं की प्रशंसा करेंगे तो अहं की पुष्टि होगी।

मक्खी स्वच्छ स्थान पर या शरीर के स्वस्थ स्थल पर नहीं जाकर फोड़े-फुँसी या घाव पर ही बैठती है। चील की दृष्टि मरे हुए सर्प पर पड़ती है। इसी प्रकार दोष दृष्टि वाला सर्वत्र दोषों को ही देखता है। मनुष्य को चील नहीं राजहंस बनना है। उसकी दृष्टि मरे हुए सर्प पर नहीं अपितु सच्चे मोतियों की

माला पर पड़नी चाहिए। उसे फोड़े-फुँसी पर बैठने वाली मक्खी की तरह नहीं बनना है। अपितु पुष्प-पराग लूटने वाले भ्रमर की तरह बनना है। 'गुणिषु प्रमोदम्' के सूत्र को सार्थकता प्रदान करनी है।

गुणानुराग से मात्सर्य भाव का विनाश होकर विनय, विनम्रता आदि सदगुणों की वृद्धि होती है। मनुष्य की जैसी दृष्टि होती है वैसी ही उसे सृष्टि दिखाई देती है।

महाभारत का एक प्यारा-सा घटना प्रसंग है। कौरव एवं पाण्डव दोनों अपने विद्या-गुरु के पास अभ्यास करने जाते हैं। पुराने जमाने में विद्यार्थियों की परीक्षा करके ज्ञान दिया जाता था। आचार्य ने दुर्योधन और युधिष्ठिर दोनों की परीक्षा ली। दुर्योधन को बुलाकर कहा कि तुम इस गाँव में जाओ और गुणवान मनुष्यों की गिनती कर आओ। युधिष्ठिर से कहा तुम इस गाँव में जाओ और देखो कितने अवगुणी व्यक्ति हैं। दोनों अपने-अपने स्थल पर जाते हैं। दुर्योधन वापिस लौटकर आता है और कहता है — गुरुदेव! आपके कहे अनुसार मैंने बहुत खोज की, पूरे गाँव में घूमा पर मुझे एक भी गुणी व्यक्ति इस गाँव में नहीं मिला। कोई अहंकारी था, कोई कंजूस था, कोई जुआरी था, इस प्रकार अमीर से लेकर गरीब तक सभी में अवगुण थे।

युधिष्ठिर भी आचार्य के पास आया और कहा — गुरुदेव! आपने मुझे जिस काम के लिए भेजा वह मैं कर आया। मैं व्यक्तियों की गिनती नहीं कर सका। मुझे इस गाँव में एक भी अवगुणी दिखाई नहीं दिया। नीच से नीच व्यक्ति में भी कोई न कोई गुण अवश्य था। कसाई में अपने द्वारा किए जा रहे कार्य के प्रति निंदा का भाव था, प्रायश्चित्त का भाव था। वह हिंसा कार्य को हेय समझकर छोड़ना चाहता है, पर आजीविका के समक्ष मजबूर होकर नतमस्तक है। मैंने तो जितनों को देखा, सभी में कोई न कोई गुण अवश्य था।

युधिष्ठिर के इस उत्तर से गुरुदेव प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि यही वास्तव में ज्ञान प्राप्त करने के योग्य है।

- वास्तव में श्रावक की दृष्टि कृष्ण की तरह, युधिष्ठिर की तरह होनी चाहिए। इस संसार में कोयले एवं हीरे दोनों मिल सकते हैं। आप दोनों में से किसी के भी ग्राहक बन सकते हैं, पर याद रखिए यदि कोयले के ग्राहक बनेंगे

तो उसके कालेपन से आपके हाथ काले होंगे। हीरे के ग्राहक बनेंगे तो उसके प्रकाश से प्रकाशित होंगे। स्वयं के दोष दर्शन, पर दोष वर्जन, पर गुणानुरागिता से आप उन्नति के सोपान की ओर अग्रसर हो सकेंगे।

जैसे एक चित्रकार सुन्दर चित्र बनाने के लिए सौन्दर्य समूह को अपने मन में संजोकर चित्र बनाता है। उसमें रही कमियों को दूर करता है। उसके मन में एक ही भाव रहता है येन-केन प्रकारेण यह चित्र सुन्दर बन जाए। उसी प्रकार स्वयं को भव्य रूप देने के लिए हमारे अन्दर स्थित अवगुणों को देखकर हमें उन्हें उलीचना है। बाहर निकालना है तथा गुण रूपी सुन्दर आकृति से स्वयं को सजाना है। बाह्य रूप, रंग, सौन्दर्य का कोई मूल्य नहीं है। यदि मूल्य है तो आन्तरिक गुणों का, सौन्दर्य का। कहा भी है —

सूर्य की शोभा आकाश से नहीं उसके प्रकाश से है।
 चन्द्र की शोभा गगन से नहीं उसकी शीतलता से है।
 पुष्प की शोभा उपवन से नहीं उसके सुवास से है।
 मनुष्य की शोभा रूप से नहीं उसके गुणों से है।

हम अपने विचारों से ही महान् बनेंगे। विचारों से ही देव, दानव और पशु बनेंगे। यदि आपने अपने मन में सोच लिया कि मुझे अपने दोषों का त्याग करना है आप अपने इस अच्छे विचार पर सुदृढ़ हैं तो बाहर से चाहे जितने झंझावात आएँ, तूफान आएँ, कितनी ही आलोचना की आँधियाँ चले अपने प्रण एवं कर्तव्य से नहीं हट पाएँगे। लड़ाई की हार इतनी हार नहीं, विचारों की हार ही सबसे बड़ी हार है। विचारों का वैभव बाह्य वैभव से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इस वैभव के होने पर मनुष्य संसार के मैदान में विजय प्राप्त कर सकता है। हमें अपने सुविचारों पर मजबूती से पैर जमाए रखने हैं।



उबरें चिंता के मकड़ जाल से

कल का दिन देखा है किसने, आज का दिन खोएँ क्यों ।
जिन घड़ियों में हँस सकते हैं, उन घड़ियों में रोएँ क्यों ॥

सबसे छोटे व प्यारे पुत्र की सर्प दंश से मृत्यु होने के कारण एक पिता चिंता से अत्यधिक व्याकुल हो गया । उसने सपेरे को बुलाकर साँप को पकड़वा लिया । पिता साँप को मारने वाला ही था कि तभी साँप ने कहा आप मुझे क्यों मारते हैं ? मैंने तो मृत्यु के आदेश का पालन किया था । दंड देना ही है तो मृत्यु को दंड दो ।

पिता मृत्यु के पास गया । उससे कहा — आखिर तुम कौन होती हो मेरे पुत्र की मौत का आदेश देने वाली ? मृत्यु ने कहा — मुझे समय ने ऐसा करने को कहा था, पिता समय के पास गया और कहा — तुमने मेरे पुत्र की मौत का आदेश क्यों दिया ? समय ने कहा — मुझे कर्म ने ऐसा करने को कहा था । पिता कर्म के पास गया और पूछा कि वह कौन होता है मेरे पुत्र की मौत का आदेश देने वाला । कर्म ने कहा — मैं तो जड़ हूँ । करने वाला तो तुम्हारा पुत्र ही था । तुम उसी से जाकर पूछ लो कि सही हुआ या गलत ?

पुत्र की आत्मा ने कहा — ये सभी लोग ठीक कह रहे हैं। मैंने ऐसा कर्म कहीं छिपकर किया था, जिसका मुझे परिणाम प्राप्त हुआ।

जीवन में किसी भी विपरित घटना घटने के पीछे हम स्वयं किसी-न-किसी रूप में उत्तरदायी हुआ करते हैं इसलिए उससे चिंतित होने की बजाय हम उसके कारण की खोज करें और भविष्य में ऐसा न करने का संकल्प लें। साथ ही चिंता करने से किसी भी समस्या का हल नहीं होता बल्कि समस्या विकराल रूप धारण करने लगती है। हमें सकारात्मक चिंतन करते हुए उससे उबरने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि हम सभी जानते हैं कि चिन्ता करना अत्यधिक हानिकारक है। यह हमारी शक्ति का समूल नाश करती है, विचारों को भ्रान्त बनाती है तथा आकांक्षाओं को कुंठित करती है। चिन्ता से मानसिक रोग होते हैं इसलिए व्यक्ति को चिंता करने की बजाय जिस समस्या के कारण चिंता हो रही है उस समस्या का समाधान करके इससे ऊपर उठना चाहिए।

व्यक्ति जब भूत और भविष्य का भार एक साथ वर्तमान में ढोकर चलता है तो वह लड़खड़ा जाता है, फिर चाहे कोई कितना भी पराक्रमी क्यों न हो। भूत से प्रेरणा लेकर भविष्य की योजना बनाकर आज को उसके अनुरूप सफल बनाकर हम वर्तमान में जीएँ। आज की परिधि में रहने का अभ्यास करें।

एक व्यक्ति प्रभु से प्रार्थना कर रहा था — 'हे प्रभु! केवल आज का भोजन जुटा दो।' पास में खड़े लोग यह सुनकर हँसने लगे कि माँग कर भी क्या माँगा केवल आज का भोजन जुटा दो, कल क्या खाएगा ?

ज़रा ध्यान दीजिए कि यह प्रार्थना केवल आज के भोजन के लिए ही है इसमें कल की रोटी की प्रार्थना नहीं है। न ही यह है कि मुझे इतनी रोटी आज दे कि मेरा काम कुछ दिन चल जाए।

कल की चिन्ता छोड़ दो। कल अपनी सुध स्वतः लेगा। आज की कठिनाइयाँ ही आज के लिए क्या कम है ? आप लोगों का यह कहना होगा कि 'कल की चिन्ता तो करनी पड़ेगी, परिवार में हैं, उसकी सुरक्षा के लिए बीमा भी करना है, लड़कियों की शादी करनी है, वृद्धावस्था के लिए भी बचत करनी है।'।

ठीक है भविष्य के लिए योजनाएँ बनाइए। लेकिन उनके लिए आपको जीवन जीने की कला सीखनी होगी। कहने के अभिप्राय को समझना होगा। कल पर विचार अवश्य कीजिए, इस पर मनन कीजिए, योजनाएँ बनाइए, तैयारियाँ कीजिए, किन्तु उसके लिए चिन्ता मत कीजिए, चिन्तित नहीं होइए।

यदि जहाज डूब जाए तो उसे आप और मैं ऊपर नहीं ला सकते। जिस भी त्रुटि के कारण उसे डूबना था वह तो डूबा ही और डूबेगा भी। आप और मैं उसे नहीं रोक सकते। जो हो चुका उसके लिए सिर पीटने से तो यही अच्छा है कि त्रुटियों को सुधारें आगे की समस्याओं पर विचार करें। सोचें कि यदि ऐसी उलझनों से उलझे रहेंगे तो जीवन और समय दोनों नष्ट रहेंगे तथा जीना भी मुश्किल हो जाएगा।

सही और गलत विचारधारा में मुख्य अन्तर यही है कि सही विचार धारा प्रयोजन और परिणाम पर आधारित है। उससे हम रचनात्मक कार्यों हेतु प्रेरित होते हैं। इसके विपरीत गलत विचार धारा अक्सर उद्वेग और स्नायु विघटन का हेतु बनती है।

अभी हम भूत और भविष्य के संधि-स्थल पर खड़े हैं। भूत तो चला गया कभी लौटकर नहीं आएगा, भविष्य तीव्रता से हमारे समीप आ रहा है। वर्तमान की उपेक्षा करके हम पल मात्र के लिए भी दोनों में से एक के होकर शांति से नहीं जी सकते हैं। इससे हमारी शारीरिक एवं मानसिक शक्ति एवं शांति का हास होता है। हमें जो प्राप्त हो रहा है उसी में संतोष कर लेना चाहिए। सूर्यास्त तक जो कोई भी मिठास, धैर्य, स्नेह और पवित्रता से रह सकता है इसी को जीना कहते हैं। जीवन की हमसे यही अपेक्षा है।

सुखी जीवन तो वही है
जो आज को अपना बना ले।
और हो निश्चिन्त कह दे
जी लिया बस आज मैं तो
'कल', जो करना हो तू कर ले।

कल की चिन्ता क्यों करे ?

शाह शुजा की पुत्री अत्यधिक धर्म परायण और वैराग्यपूर्ण भावनाओं से

ओत-प्रोत थी। उसके विरक्त भावों को देखकर शाह ने उसका विवाह एक ज्ञानी फकीर से कर दिया, जिससे उसकी पुत्री की धर्म-भावनाओं को कभी ठेस नहीं पहुँचे और वह इच्छानुसार अपना जीवन व्यतीत कर सके।

शाह शुजा की पुत्री फकीर पति के साथ अत्यन्त प्रसन्नता से कुटिया में रहती है। उसने वहाँ की सफाई करते समय कुटिया के छप्पर से एक छींका लटकता हुआ देखा जिसमें दो सूखी रोटियाँ रखी थी। उसने आश्चर्य से अपने पति की ओर देखा तथा पूछा — ये रोटियाँ यहाँ क्यों रखी हैं ?

फकीर ने उत्तर दिया — कल हम एक-एक खा लेंगे। पति की बात सुनकर पत्नी ने हँसते हुए कहा — मेरे पिता ने तो आपको वैरागी और अपरिग्रही फकीर समझ कर ही मेरा विवाह आपके साथ किया था। किन्तु अफसोस है, आपको कल के खाने की चिन्ता आज ही है। फिर करने वाला सच्चा फकीर नहीं हो सकता है। अगले दिन की चिन्ता तो घास खाने वाला जानवर भी नहीं करता है फिर हम तो मनुष्य हैं। हमें यदि कुछ मिला तो हम खा लेंगे अन्यथा आनन्दपूर्वक, प्रेमपूर्वक रहेंगे तथा खुदा की बंदगी करेंगे।

फकीर ने जब अपनी पत्नी के यह विचार सुने तो मन ही मन कहने लगा — हे देवी! तू धन्य है। अब मेरा जीवन सार्थक हो गया।

परन्तु मानव की यह शोचनीय प्रवृत्ति है कि हम वस्तुस्थिति से पलायन कर जाते हैं। आज का काम कल, परसों यहाँ तक कि वर्षों के लिए छोड़ देते हैं। जीवन बनाने के लिए बालक का यह कहना है कि अभी तो मैं बच्चा हूँ बड़ा होने पर देखूँगा। किशोर कहता है कि यह उम्र खेलने-कूदने की है मैं युवावस्था में कुछ करूँगा। युवा कहता है कि यह मौज-शौक की उम्र है बाद में करूँगा। गृहस्थ बनने पर उसे उसके झंझटों से ही मुक्ति नहीं मिलती और वृद्धावस्था आने पर बहुत विलम्ब हो जाता है। जब कामकाज से छुट्टी मिलती है तब अतीत पर दृष्टिपात करने पर ऐसा लगता है कि मानों सब कुछ समाप्त हो गया है और रहता है मात्र पश्चाताप। हमारे जीवन की यह छोटी-सी शोभा यात्रा कितनी विचित्र है। खाली हाथ आए और अभी नहीं बाद में करेंगे इस कारण खाली हाथ जा रहे हैं। जबकि प्रत्येक पल का पूर्ण दोहन ही जीवन की सार्थकता है।

हमारा जीवन नदी के प्रवाह की भाँति परिवर्तनशील है। इसलिए हमें प्रत्येक क्षण को सार्थक करना है। निरंतर परिवर्तित, अनिश्चित, अनबूझे भविष्य की गुत्थियाँ सुलझाने में वर्तमान के सुख को क्यों नष्ट करते हैं ? आज की ईश्वरीय सृष्टि में चिन्ता रहित होकर प्रभु का जो प्रसाद मिला है उसी में जिँएँ। आज का स्वागत करें, यही जीवन जीने का सार है।

कल का दिन देखा है किसने,
आज का दिन खोएँ क्यों।
जिन घड़ियों में हँस सकते हैं,
उन घड़ियों में रोएँ क्यों॥

हम अनेक बार जीवन की विकट परिस्थितियों का साहस और धैर्य से मुकाबला कर लेते हैं पर छोटी-छोटी बातों को अपने पर हावी होने देते हैं उनसे कुप्रभावित हो जाते हैं जो उचित नहीं है। मिट्टी में मिलने से पहले जीवन का पूर्णतया आनन्द लो। जिससे हम उन्नति शिखर की ओर अग्रसर हो सके।

कई बार बीमारी का आधार शारीरिक नहीं होता है। भय, चिन्ता, घृणा, स्वार्थपरता, पूर्वाग्रह, अहं, राग-द्वेष आदि के कारण उत्पन्न स्थितियाँ व्याधियों का प्रमुख कारण है। चिन्ता स्वस्थ को भी रोगी बना देती है। चिन्ता से स्वाभाविक सौन्दर्य समाप्त हो जाता है।

भगवान हमारे पापों को क्षण भर के लिए चाहे माफ कर दे किन्तु स्नायु संस्थान हमारी किसी भी भूल हेतु क्षमा प्रदान नहीं करता है। विकारों को उत्पन्न करता ही है।

जो व्यक्ति मात्र अपने बारे में ही सोचता है उसे जीवन में कुछ विशेष प्राप्त नहीं होता। वह हर समय अत्यन्त दुःखी रहता है। किन्तु दूसरों की सेवा के लिए स्वयं के जीवन को भूलने वाला निश्चित रूप से सुख की प्राप्ति करता है। खाली समय में अपने सुख-दुःख का विचार करना ही हमारे दुःखों का कारण है। हमें इनके बारे में ज़्यादा नहीं सोचना चाहिए। चिन्ता निवारण का प्रथम नियम है व्यस्त रहिए, चिन्तित व्यक्ति को चाहिए कि वह हर वक्त व्यस्त रहे अन्यथा निराशा में डूब जाएगा। हमें प्रतिदिन प्रभु से यह प्रार्थना करते हुए इस प्रकार का जीवन जीने की कोशिश करनी चाहिए कि —

हे प्रभु मुझे सद्बुद्धि दो, जिन्हें मैं बदल न सकूँ, उन्हें स्वीकर कर लूँ। मुझे साहस दो, हो सके तो मैं स्थिति को बदल दूँ। मुझे शक्ति दो कि मैं सुख-दुःख से ऊपर उटूँ। होनहार को, भवितव्यता को स्वीकार करूँ।

स्वयं के दुर्भाग्य एवं कठिनाइयों हेतु व्यक्ति स्वयं ही जिम्मेदार है। उसे यह चिन्तन करना चाहिए कि अपने अधःपतन का कारण केवल मैं स्वयं हूँ। मैं स्वयं अपना सबसे बड़ा दुश्मन हूँ। जब हम अपने शत्रुओं से घृणा करते हैं तो हम उन्हें अपनी भूख, नींद, रक्तचाप, सुख पर हावी नहीं होने देते हैं। हमारे शत्रुओं को यदि यह ज्ञात हो जाए कि वे हमारे व्यवहार से खिन्न हैं, वे भी हमें तंग करने की कोई योजना बना रहे हैं। हानि पहुँचाने की बराबरी को सुनकर शत्रु प्रसन्नता से नाच उठते हैं। वे सोचते रहते हैं उसका सुख छिन्न-भिन्न हो गया है। हमारी घृणा शत्रु को चोट नहीं पहुँचाती अपितु हमारे जीवन को नरक बना देती है।

यदि आपको कोई दुःखी बनाने का प्रयत्न करता है तो आप उसे दुःखी नहीं कीजिए। उसकी उपेक्षा कीजिए, प्रसन्न रहिए पर जैसे के साथ तैसा करने का प्रयास मत कीजिए। जब आप जैसे के साथ तैसा करते हैं तो अपने शत्रु को दुःखी करने की अपेक्षा स्वयं दुःख के सागर में गोते लगाते हैं। इससे आप तनावपूर्ण स्थिति में जीएँगे और जब आपकी ईर्ष्या पुरानी हो जाएगी तो आप उसे जीत नहीं पाओगे अनेक रोगों के शिकार हो जाओगे। अपने शत्रु से भी प्रेम रखो। उसे बार-बार क्षमा कर दो।

अपने हृदय की क्षमा, दया, प्रेम, करुणा आदि से हम स्वयं को अत्यधिक सुन्दर बना सकते हैं। अन्य उपचार से नहीं। घृणा, चिन्ता, थकान हमें नष्ट कर रहे हैं, हमारी आकृति को विकृत कर देते हैं। यदि हम शत्रु से प्यार नहीं कर सकते हैं तो कम से कम स्वयं से तो करें। शत्रुओं को नीचा दिखाने में या समाप्त करने में ऐसा न हो कि तुम स्वयं समाप्त हो जाओ। शत्रुओं को भुलाने का एक सही उपाय है कि किसी महान् कार्य में लग जाँ, व्यस्त रहें। जो व्यवहार, सोच आपको स्वयं के लिए पसन्द नहीं है, दूसरों के लिए वैसा सोचकर अपना एक पल भी नष्ट मत कीजिए। उसमें चिन्तित नहीं होइए। चिन्ता तो चिन्ता के समान है।

मेरा एक ऐसे व्यक्ति से मिलना हुआ जो पहले निरन्तर चिन्तित रहता था कि मेरे पास अमुक वस्तु का अभाव है, यह नहीं है, वो नहीं है। उसकी रात की नींद गायब थी, दिन को चैन नहीं था। मैंने उसे समझाया भाई इस प्रकार कल्पनाओं के ऊँचे महल बनाकर तुम स्वयं को नष्ट कर रहे हो, अमूल्य मानव जीवन को व्यर्थ ही गँवा रहे हो। यदि तुम्हें जीवन में सुख शांति से जीना है, अभाव की जिंदगी से ऊपर उठना है तो गुणों में अपने से ऊपर को देखो तथा समृद्धि में अपने से नीचे को देखो।

वह कहने लगा लोग दो-दो हजार के जूते पहनते हैं पर मैं हजार-पन्द्रह सौ के भी नहीं पहन सकता तो ए.सी. प्लेट की बात ही कैसे करूँ। मैंने उसे 10-15 मिनट रोका एक विकलांग को बुलाया और उस व्यक्ति से कहा — तुम इसलिए दुःखी हो कि तुम्हारे पास शान-शौकत को प्रस्तुत करने वाले महंगे जूते नहीं हैं, पर इस व्यक्ति के पैर ही नहीं हैं फिर भी यह कितना प्रसन्न है। उस विकलांग व्यक्ति से प्रसन्नता का राज पूछा तो उसने कहा मेरे एक पैर, दो हाथ, आँख, कान तो है ही। मैं अपना काम स्वयं कर सकता हूँ, पर दुनिया में अनेक लोग ऐसे हैं जो कुछ भी नहीं कर सकते, बैशाखी के सहारे एक ही स्थान पर पड़े-पड़े खाते-पीते हैं। फिर जो नहीं है उसका चिंतन करने से वे मुझे मिलने वाले नहीं हैं फिर क्यों न जो मेरे पास है मैं उसका आनन्द लूँ और अगर ईश्वर कृपा से वो मिल जाएँगे तो उसका भी आनन्द ले लूँगा यही मेरे जीवन की सुख-शांति का राज है। भला अब आप ही बताइए क्या ऐसे लोगों को दुनिया की कोई भी ताकत या अभाव दुःखी कर सकता है।

आपके दुःख का कारण दूसरे नहीं आप स्वयं ही बन गए हो। क्या हम भी कहीं अभाव के लिए तो चिन्तित नहीं रहते हैं। जो प्राप्त है उसका आनन्द लेकर उससे प्रसन्न होने वाले विरले ही होते हैं। जो प्राप्त है उसे देखें। प्रत्येक घटना के उज्ज्वल पक्ष को देखें। उपलब्ध वस्तुओं का आनन्द लें। अनुपलब्ध की चिन्ता छोड़ें। हमें यह चिन्तन करना चाहिए हम क्यों अभावों को देख रहे हैं? सौन्दर्य के नन्दनवन में रहकर भी हम आनन्द का उपभोग क्यों नहीं कर रहे हैं? दूसरों की नकल नहीं कीजिए, अपने को पहचानिए स्वयं की जो खूबियाँ है उन्हें बाहर आने दीजिए। ऐसा करके हम अपने जीवन की खटास को मिटास

में बदल सकते हैं। हानि में भी विशेष रूप से लाभ उठाने की कोशिश कीजिए।

एक व्यक्ति को किसी साइकिल वाले ने टक्कर मार दी। व्यक्ति क्रोधित तो हुआ, पर गालियाँ निकालने की बजाय मिठाइयाँ बाँटने लगा। लोगों ने समझा इसकी बुद्धि सटिठया गई है। आखिर एक व्यक्ति ने पूछा, यह मिठाई की दावत कैसे? उसने कहा — ईश्वर की कृपा है कि हमेशा तो यह ट्रक चलाता है संयोग से आज साइकिल ही चला रहा था। यदि अपने जीवन को इस तरह से जीना शुरू कर दिया तो हमारी दुर्बलताएँ, अप्रत्याशित रूप से हमारी सहायक बन जाएगी। जीवन की हर घटना के प्रति अपनाया गया समारात्मक नजरिया व्यक्ति को सदैव चिंता और तनाव से मुक्त रखती है। घटना प्रभावशाली नहीं होती। हमारी ग्रहण करने की दृष्टि ही उसे सुख और दुःख में परिवर्तित कर देती है।

एक व्यक्ति ने मुझे बताया दो साल पहले उसके परिवार में आउटिंग का प्रोग्राम बना। सब अपनी तैयारियों में व्यस्त थे। घर के हर सदस्य को उसके हिसाब से काम बाँट दिए गए थे। जाने से पहले सब कुछ चेक करने के बाद पड़ोसियों को हिदायत व जिम्मेदारी देकर हम घर से निकल पड़े। स्टेशन पहुँचे, तो पता लगा गाड़ी 10 घंटे लेट है। हम बहुत उदास हो गए।

हमारा घर स्टेशन से 3-4 किलोमीटर ही था, सो हम घर वापस आ गए। घर पहुँचे तो सामने का दृश्य देखकर भौंचक्के रह गए। पानी की टंकी से पानी बहकर घर में इकट्ठा हो चुका था और पानी की मोटर का स्विच ऑन था। गाड़ी लेट हो गई वरना मोटर में शॉर्टसर्किट हो सकता था और पूरे घर में करंट फेल जाता। माँ स्विच ऑफ करना भूल गई क्योंकि उस बीच कुछ देर के लिए बिजली चली गई थी। सबके चेहरों पर रौनक लौट आई। हमने ईश्वर को धन्यवाद दिया। अगर गाड़ी लेट न होती, तो न जाने क्या होता। हमें विश्वास हो गया कि जो होता है, अच्छे के लिए होता है।

चिन्ता मानव मस्तिष्क को विकृत कर देती है, तन को गला देती है और हजार-हजार बीमारियों को निमंत्रण देकर बुलाती है।

‘चिन्ता समं नास्ति शरीर शोषणम्’

चिन्ता के समान शरीर का शोषण करने वाली दूसरी कोई वस्तु नहीं है।

वर्षों का पाला-पोषा शरीर चिन्ता से कुछ दिनों में कुपोषण का शिकार हो जाता है।

चिता चिन्ता समा प्रोक्ता, बिन्दु मात्र विशेषतः ।
चिता दहति निर्जिवं चिन्ता सजीवमप्यहो ॥

चिता और चिन्ता में ज़्यादा फ़र्क नहीं है, केवल बिन्दु मात्र का अन्तर है। चिता तो मुर्दे को जलाती है किन्तु चिन्ता सजीव को अर्थात् जिन्दो को भी जला देती है। चिता एक बार जलाती है चिन्ता हजारों बार। अध्यात्म चिन्ता उत्तम है, मोह की चिन्ता मध्यम, काम भोग की चिन्ता अधम तथा दूसरों की चिन्ता अधमाधम है।

सेनापति फील्ड मार्शल वेहल से किसी जिज्ञासु ने पूछा कि आपके सैनिक जीवन की सफलता का रहस्य क्या है? उसने कहा — कैसी भी भयंकर परिस्थिति क्यों न हो, मैंने कभी भी अपने मन में चिन्ता नहीं आने दी। जिज्ञासु ने कहा — कल्पना कीजिए, आप युद्ध के मैदान में शत्रु से चारों ओर घिर गए हैं। क्या उस समय भी आपके मन में चिन्ता पैदा नहीं होगी? सेनापति ने मुस्कराते हुए कहा — आज दिन तक चिन्ता से कोई विपत्ति टली नहीं है। यदि उस समय चिन्ता ही करते रहे, समाधान नहीं करें तो और अधिक परेशानी हो जाएगी। विपत्ति पर विजय-वैजयन्ती फहराने के लिए हिम्मत की आवश्यकता है, चिन्ता की नहीं। हिम्मत की ही कीमत होती है।

यदि हम नियमों का पालन करते रहे तो एक दिन सब ठीक हो जाएगा। संघर्ष एवं दिल दहलाने वाले अवसरों में भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। धार्मिक श्रद्धा चिन्ता को रोकने की रामबाण दवा है। मनुष्य की सृष्टि जीने के लिए हुई है, मात्र जीवन को समझने के लिए नहीं।

अपनी चिन्ता नहीं करो। क्या खाओगे, क्या पिओगे और क्या पहनोगे यह मत सोचो। मौज-शौक और खान-पान के अलावा जीवन का अपना विशेष महत्त्व है। इन उड़ते हुए पक्षियों को देखो वे अनाज नहीं बीते हैं, फसल नहीं काटते और भंडार भी नहीं भरते हैं, फिर भी परमात्मा की ऐसी व्यवस्था है कि उनका भरण-पोषण होता है। फिर आप तो ज्ञानवान, विवेकवान हैं उनसे अच्छी स्थिति में है। अभिव्यक्ति के लिए भाषा है। कार्य करने के लिए हाथ,

चलने के लिए पाँव है फिर किस बात की चिंता ? उसका उपयोग करो और उससे जो मिल जाए उसमें मस्त रहो ।

परिस्थितियों से चिन्तित मत होइए, घुटने मत टेकिए । अजेय होने पर भी मुकाबला करो । अजेय होने पर भी निराश मत होवो, चिन्तित मत होओ, उसके विरुद्ध संघर्ष करो, भयभीत नहीं बनो, दूर मत भागो । जिसको बदल नहीं सकते हो उसको स्वीकार करने का विवेक रखो, भले-बुरे को समझो और व्यस्त रहो । फिजूल के तनाव युक्त करने वाले काम नहीं करके स्वयं को सद्कार्य में लगाओ । मुस्कराते रहो, दूसरों को सुखी करने का प्रयास करते हुए स्वयं के दुःखों को भूल जाओ । अपने भाग्य में आए हुए अच्छे बुरे को स्वीकार करते हुए सहज जीवन जीने का प्रयास करो ।

अंबानी बंधुओं के पास आज कोई कमी नहीं है फिर भी दिन-रात न जाने कौन-सी कमी को पूरा करने में लगे हुए हैं । खरबों का मालिक होने के बावजूद धीरू भाई अंबानी क्या अपने जीवन को एक दिन भी ज़्यादा बढ़ा पाएँ, धन से जीवन को खरीदा नहीं जा सकता है । इसका तो अंत नहीं है, पर जीवन का अंत जरूर है । जीवन का अंत हो उससे पहले हम अनंत की ओर बढ़ जाएँ । सुविधाओं की कभी-भी पूर्णता होने वाली नहीं है, पर श्वास की घड़ियां कभी-भी पूर्ण हो सकती है । श्वास पूर्ण हो उससे पहले हम शांति की ओर क्रदम बढ़ा ले ताकि जीवन के संध्याकाल में मुक्ति के आनंद महोत्सव को घटित किया जा सके ।



सेवा से करें समय को सार्थक

सेवा करने वाले हाथ उतने ही प्रणम्य हैं
जितने कि संतों के चरण-कमल ।

सेवा धर्म का सरल एवं विशिष्ट अंग है। यह किसी पंथ-परंपरा या सम्प्रदाय का नहीं अपितु मानवीय धर्म है। एक जीव दूसरे जीव की सेवा एवं उपकार करके ही जीवित रह सकता है। जो सेवा को धर्म नहीं समझते वे अज्ञान में हैं। मनुष्य जन्मता है वह अपना कल्याण करता है साथ ही दूसरों का मार्गदर्शक भी बन सकता है। मार्गदर्शक के रूप में अनेक भेद-प्रभेद हो सकते हैं, उनमें एक भेद सेवा भी है। कहा गया कि —

वैयावच्चं नियंय करेह, उत्तर गुणे धस्तिणं ।
सव्वं किल पडिवाई वैयावच्चं अपडिवाई ॥

अर्थात् उत्तम गुण धारण करने वालों की नियमित सेवा करो। सब गुण भूलाए भी जा सकते हैं पर सेवा का गुण कभी नहीं भुलाया जा सकता है। जो सुखी है हम उसकी सेवा करें तो यह सेवा असली सेवा नहीं, सामान्य सेवा है। वास्तविक सेवा तो इनमें हैं —

बालवृद्ध यतीनाञ्च, रोगिणां यद् विधीयते ।
स्वशक्त्या यत्प्रतीकारो, वैयावृत्य तदुच्यते ॥

बाल, वृद्ध, रोगी, साधु की पीड़ा का जो अपनी सेवा-शक्ति से प्रतीकार अर्थात् दूर करता है वह सेवा कही जाती है ।

तमन्ना ददे दिल की हो तो, कर खिदमत फकीरों की ।
नहीं मिलता है यह गौहर, बादशाहों के खजाने में ॥

मनुष्य तो क्या प्रकृति में भी निरपेक्ष-भाव से सेवा-भाव दृष्टिगोचर होता है । जैसे-पेड़, पहाड़, नदियाँ झरने आदि । प्रकृति का हम पर बहुत उपकार है । बादल समुद्र से ग्रहण जल करता रहता है । उसका मुँह काला हो जाता है और जब वह देता है तो देता रहता है जब वह निरन्तर देता है तब उसका मुँह धवल, स्वच्छ, उज्ज्वल हो जाता है ।

इसी प्रकार मनुष्य यदि केवल लेता ही रहा, देगा नहीं तो वह दम्भी, अहंकारी हो जाएगा । यह संसार खत्म हो जाएगा क्योंकि मूल प्रवृत्ति-‘परोस्परोपग्रहो जीवानाम्’ पर कुठाराघात होगा । मनुष्य सद्गति को प्राप्त नहीं कर सकेगा । इसलिए सेवा भाव आवश्यक है ।

‘भगवती आराधना’ में कहा गया है कि जो सेवाभावी है, परोपकारी है, जो मन-वचन-काया एवं तन-मन-धन से सेवा करते हैं उनके तीर्थकर प्रकृति का बंध होता है, पर यह बंध तभी होगा जब सेवा, दया, क्षमा, करुणा आदि धर्मों का आचरण अहं-ममता की विस्मृति के साथ हो, सहज-स्वाभाविक संस्कारों से युक्त हो । सेवा में वात्सल्य भाव होना अत्यन्त आवश्यक है । जब तक सेवा में वात्सल्य का झरना प्रवाहित नहीं होगा, तब तक उसमें तन्मयता, सरसता, आत्मीयता नहीं आएगी । सेवा में अहं, ममता के साथ शरीरादि का विस्मरण, विसर्जन भी अत्यन्त आवश्यक है ।

एक माँ अपने बच्चे को गोद में लेकर चुप कराती है, नहलाती है, सर्दी, गर्मी, वर्षा से उसकी रक्षा करती है । स्वयं भूखी-प्यासी रहकर उसकी भूख-प्यास से रक्षा करती है । अपने भूख-प्यास की चिन्ता नहीं करके वह बच्चे की सेवा में तल्लीन रहती है । स्वयं का खाना, पीना, सोना भूलकर, शरीर की परवाह किए बिना खुद गीले में सोकर बच्चे को सूखे में सुलाती है । स्वयं की

बीमारी का ध्यान नहीं रखकर बच्चे की परिचर्या में लीन रहती है। परन्तु उसी माँ को यदि कोई यह कहे कि तुम दिन-रात इतना कष्ट सहन करके इन बच्चों की सेवा में क्यों लगी हुई हो। वह माँ यह नहीं कहती है कि ये मेरा कर्तव्य है इसलिए मैं इनकी सेवा कर रही हूँ। वह मुँह से अक्सर कुछ कह नहीं पाती है, पर उसका अन्तर्मन कहता है मेरा वात्सल्य ही इस बच्चे की सेवा करा रहा है। मैं इसके बिना नहीं रह सकती। इसने भोजन कर लिया तो मानो मैंने भोजन कर लिया, मुझे तृप्ति हो जाती है। चाहे मेरे लिए बचे या न बचे। माता सेवा के लिए नहीं करती वह वात्सल्यमूर्ति बन कर स्वयं वात्सल्यमयी बन जाती है। सन्तान की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देती है।

प्रकृति एवं मनुष्य की सेवा में अन्तर है। प्रकृति जो सेवा करती है उसे कुछ प्राप्ति की अभिलाषा नहीं है। उनका जीवन ही परोपकार के लिए है। पेड़ धूप सहन करता है, सर्दी सहन करता है, वर्षा सहन करता है तब फल प्रदान करता है। पशु, पक्षी और माँ की सेवा भावना में भी थोड़ा अन्तर है। माँ की सेवा वात्सल्यमयी होने के बावजूद भी किञ्चित् स्वार्थमयी है। वह यह है कि मेरा बेटा बड़ा होगा, ऊँचे पद पर काम करेगा, उसकी शादी होगी, बेटा-बहू हमारी सेवा करेंगे। पशु-पक्षियों में यह भावना नहीं होती है कि हमारी सन्तान बड़ी होगी, अनाज दाना चुगगा लाकर देंगे। इस स्वार्थ भाव के अतिरिक्त माँ में अपने लड़के-लड़की के लालन-पालन में न तो कोई अन्य भाव रहता है न ही किसी प्रकार का अपेक्षा भाव। आज विडम्बना है कि कष्टों को सहकर अपनी सन्तान का लालन-पालन करने वाले माता-पिता की सेवा बच्चे बड़े होकर नहीं करते हैं, उनका तिरस्कार करते हैं। इस घटना से यह स्पष्ट हो जाएगा कि आज माता-पिता की क्या स्थिति हो रही है —

एक पुत्र अपनी माता को पत्र लिखता है कि आप यात्रा के लिए तैयारी कर लीजिए। मैं रविवार को सुबह आ रहा हूँ। दोपहर में हम यात्रा के लिए जाएँगे। माँ-बेटे का पत्र प्राप्त करके अत्यधिक खुश होती है। बहू को पत्र पढ़ाती है, मोहल्ले एवं रिश्तेदारों में मिठाई बाँटती है। लोग पूछते हैं किस स्थान की यात्रा पर जा रही हो तो माँ कहती है मेरे लाडले ने स्थान गुप्त रखा है। पहिले से तैयारी करने के लिए लिखा है तो दूर ले जा रहा होगा। माँ अपने

सामान के साथ रास्ते में खाने-पीने का भाता भी पूरा तैयार करती है। बहू से भी सामान बाँधने को कहती है। रविवार का दिन है, बेटा आता है। माँ की प्रसन्नता का पारावार नहीं है। बेटा कहता है माँ हम तीन घंटे बाद यहाँ से यात्रा के लिए चलेंगे। माँ स्थान का नाम पूछती है। बेटा कहता है माँ तुम चलोगी तो पता चल जाएगा। बेटा तीन घंटे बाद ए.सी. कार में माँ को ले जाता है। माँ परमात्मा को धन्यवाद करती है। दो घंटे बाद एक आश्रम के आगे कार रुकती है। माँ सोचती है तीर्थ स्थान की धर्मशाला होगी। बेटा माँ का सामान लेकर कार्यालय में जाता है। फार्म भर कर रजिस्टर में एन्ट्री करता है। माँ को कमरा मिलता है वहाँ ले जाकर बेटा माँ से कहता है — माँ! मैंने तुम्हें अन्तिम समय में यात्रा करवा दी है। मेरे और मीनू के लिए अब तुम्हारी और देखभाल करना सम्भव नहीं है। यह वृद्धाश्रम है यहाँ तुम्हारी देखभाल की, खाने की कोई कमी नहीं रहेगी। मैंने साल भर के पैसे जमा करवा दिए। हाँ, यह पाँच सौ रुपये लो। मैं तुम्हें हर महिने हाथ खर्च भी भेज दूँगा। यह सुनकर माँ अवाक् रह जाती है उसके नेत्रों में आँसू गिरते हैं बेटा-बहू माँ को छोड़कर आ जाते हैं।

इधर आश्रम में माँ भजन-कीर्तन में धीरे-धीरे मस्त हो जाती है। दस महिने बाद माँ बीमार हो जाती है। बेटे-बहू से मिलने की इच्छा जाहिर करती है। आश्रम के प्रबंधक द्वारा 3-4 पत्र बेटे-बहू को डाले जाते हैं, पर निष्ठुर बने हुए वे ऐशो आराम की जिंदगी व्यतीत करने वाले माँ की सुध लेने नहीं आते। एक महीना और बीत गया। माँ निरन्तर अपने लाडले को याद कर रही है वो नहीं आया पाँच सौ रुपये और अवश्य आ जाते हैं। माँ की हालत बिगड़ते हुए देखकर आश्रम द्वारा तार भेजा जाता है। तब बेटा बहू आश्रम में आते हैं। आश्रम में प्रवेश करने पर बेटे-बहू को एक कक्ष में ले जाते हैं। जहाँ अपने बेटे-बहू के इंतजार में जिस माँ ने अपना एक-एक पल व्यतीत करते हुए जब अपने जीवन की अन्तिम घड़ियाँ देखी तो आश्रम के अधिकारी को एक लिफाफा थमाते हुए कहा मैं तो जा रही हूँ, मेरा पुत्र बड़ा अधिकारी है, काम में व्यस्त हो गया होगा। जब भी वह आवे आप यह लिफाफा उसे थमा देना। मैं सदा-सदा के लिए अपने घर जा रही हूँ। आप लोगों ने मेरी जो सेवा की उसकी मैं सदैव ऋणी रहूँगी। मेरे पुत्र के पास समय नहीं है आप लोग अंतिम संस्कार कर देना। इधर माँ लिफाफा देकर हाथ नीचे करने लगती है उसके प्राण प्रखेरू उड़ जाते हैं।

और मुँह तक ढके हुए वह सदा-सदा के लिए सो जाती है ।

बेटा जैसे ही कक्ष में पहुँचता है अपनी माँ को इस तरह लेटे देखता है समझ जाता है कि माँ नहीं है । पुत्र कुछ बोले उससे पूर्व अधिकारीगण एक लिफाफा थमाते हुए कहते हैं आपकी माँ जाते समय आपको बहुत याद कर रही थी उन्होंने कहा यह लिफाफा मेरे पुत्र को दे देना । वह बहुत बड़ा अधिकारी है उसके पास समय नहीं है । और हम लोग इनका दाह-संस्कार कर दें । आधा घंटा पूर्व ही इनका देह-विसर्जन हुआ है । पुत्र बिना कुछ बोले लिफाफा खोलता है । माँ के आँसुओं से भीगी चिट्ठी और एक कागज में कुछ लिपटा है । चिट्ठी पढ़ता है ।

प्रिय पुत्र,

तुम खुश रहते हुए इसी प्रकार तरक्की करना । तुम्हारे जीवन की व्यस्तता को देखकर मैंने सोचा कि तुमने अपनी माँ का इतना ध्यान तो रखा, पर हो सकता है तुम्हारी वृद्धावस्था में तुम्हारा पुत्र यह भी ना करे क्योंकि उसने तुम्हें माँ-बाप की सेवा करते देखा ही नहीं । इसलिए जो नोट तुम मुझे भेजते थे मैंने उन्हीं नोटों को तुम्हारी वृद्धावस्था के लिए संभाल कर रख दिए हैं । तुम काम में ले लेना । तुम्हारे बुढ़ापे में आश्रम के साथ अन्य खर्चों के लिए मेरी सोने की चूड़ी जमा कराई हुई है सो ले लेना ।

अभी तुम और बड़े अधिकारी बनो । अपना नाम रोशन करो । तुम अपने बाप को तो पहिले ही भूल चूके थे इसलिए उन्होंने इस संसार से जल्दी अलविदा ली । माँ के लिए भी तुम्हारे पास समय नहीं है । अपना समय मत गंवाना । मेरा दाह संस्कार आश्रम अधिकारियों को करने के लिए मैंने कह दिया है ।

तुम निरन्तर आगे बढ़ों यही मेरा शुभाशीर्वाद ।

तुम्हारी माँ

पुत्र ने पत्र पढ़ा, पश्चाताप के दो आँसू गिर पड़े ।

वहाँ सब यह चर्चा कर रहे थे कि यह कैसा जीवन । बार-बार बुलाने पर भी बेटा-बहू देखने तक नहीं आए । जन्मदात्री माँ इस संसार से अन्तिम समय में तड़फ-तड़फ कर मर गई, चली गई, पर बेटे-बहू ने कभी खबर नहीं ली ।

इनका वैभव, सम्पत्ति बेकार है। इस प्रकार का जीवन तो पशुओं से भी निम्न स्तर का है।

माँ-बाप की सेवा करना तो सन्तान का धर्म है। लेकिन अपना घर बसते ही सन्तान माँ-बाप को भूल जाती है। जो अपने माँ-बाप की सेवा नहीं करते उनसे कैसे अपेक्षा कर सकते हैं कि उनके जीवन में त्याग का, सेवा का, समर्पण का भाव है। आज युवाओं में सेवाभाव, दानवृत्ति बढ़ी है, पर मैं उनसे इतना निवेदन अवश्य करूंगी कि संस्थाओं, क्लबों के सदस्य बनकर विद्यालयों में, अस्पतालों में साधन हीन लोगों की सेवा करनी अच्छी बात है, पर आपकी सेवा के प्रथम अधिकारी आपके माँ-बाप हैं। जो अपने माँ-बाप की दुआएँ नहीं ले पाया मैं नहीं समझती कि गरीबों की दुआएँ उनका भला करेगी। सेवा की शुरुआत बाहर से नहीं अपने घर से शुरू करनी चाहिए। तभी आपकी सेवा सार्थक कहलाएगी।

सेवा मानवीय धर्म है। उसका त्याग कैसे किया जा सकता है? यदि हम मानवीय धर्म सेवा का त्याग कर देते हैं तथा माला जपना, शास्त्र पढ़ना आदि करते हैं तो ये सब अधूरे हैं। मात्र बहिरंग है। अन्तरंग से यह शुद्ध भावना हो कि 'प्राणी मात्र का कल्याण हो' 'सुखी रहे सब जीव जगत के' इस तरह का दया भाव रखने से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है। जब से हम सेवा-भाव को भूल गए हैं। तब से दुःखी हैं, कष्ट में हैं, एकांगी बन गए हैं। यदि हमें आनन्दपूर्वक जीवन जीना है तो सेवा भाव आवश्यक है। सेवा भी अपन अपनी शक्ति एवं भक्ति से कर सकते हैं। यदि आपके पास धन हो तो धन से, तन से अथवा मन से भी सेवा कर सकते हैं। मनुष्य सेवा-भाव से सुखमय जीवन व्यतीत कर सकता है। सेवा करते समय छोटे बड़े का विचार मत कीजिए। यह मत सोचिए कि यह छोटा व्यक्ति है मैं इसकी सेवा नहीं कर सकता हूँ। सेवा में कोई छोटा बड़ा नहीं होता है। हमें सेवा सदा निःस्वार्थ भाव से करनी चाहिए। जो इसे धर्म नहीं मानते वे अज्ञान के अंधकार में भटकते रहते हैं।

सेवा करने वाले कभी मैले या अपवित्र नहीं होते। सेवा करने वालों में अद्भुत शक्ति और क्रियाशीलता होती है। सेवा करने वाले हाथ प्रार्थना करने वाले होठों की तरह पावन व पवित्र ही नहीं होते वरन् संत-चरणों की तरह प्रणम्य भी बन जाते हैं।

आनन्दपुर नगरी में गुरु गोविंद सिंह प्रवचन दे रहे थे। कुछ समय प्रवचन देने के पश्चात् उन्होंने जल पीने की इच्छा प्रकट की। गुरुजी ने कहा — जिसके हाथ पवित्र हो, वह आधा लोटा जल लेकर आ जाए। एक धनी व्यक्ति ने अन्य भक्तों से कहा कि आप लोग तो दिन-रात सेवा कार्य करते ही रहते हैं आज मुझे सेवा का अवसर दें। उस धनिक ने जल लाकर गुरुजी को दिया। बर्तन पकड़ाते हुए गुरुजी के हाथों का स्पर्श उस धनिक के हाथों से होने पर गुरुजी ने कुछ गंभीर होकर कहा — क्या तुम कोई काम नहीं करते हो। धनिक ने कहा — गुरुजी मेरे बड़ी-बड़ी पाँच फेक्ट्रीयाँ हैं। करीब 60 नौकर चाकर उसमें काम करते हैं। आलीशान मकान है। गुरुजी ने कहा — इतने कोमल हाथ तो उसी के हो सकते हैं जो आराम तलब वाले हो, दूसरों की सेवा पर आश्रित हो। धनी व्यक्ति ने कहा — गुरु महाराज! क्या करूँ। इतने नौकर चाकर हैं कि हाथ से काम करने का अवसर ही नहीं मिलता।

उसी समय गोविंदसिंह ने जल का पात्र नीचे रखते हुए कहा — तुमने सदैव दूसरों से सेवा कराई है। स्वयं नहीं की है। जिन हाथों ने सेवा नहीं की वे पवित्र कैसे हो सकते हैं। इसलिए यह जल ग्रहण करने योग्य नहीं है। धनिक व्यक्ति पर इतना प्रभाव पड़ा कि उसने दूसरों की सेवा करना अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया और वह दिन-रात सेवा कार्य में लग गया।

यह भी अत्यन्त विचित्र बात है कि कुछ लोग स्वार्थवश सेवा करते हैं, कुछ धन के लोभ में सेवा करते हैं।

डॉ. शंभुलाल मरीज वर्मा जी को दिलासा दे रहे थे। चेक-बैंक करने के बाद कुछ दवाएँ देते हुए उससे बोले — ये दवाएँ लेते रहें और हर हफ्ते बाद आकर मुझे दिखा दिया करें। पैर का दर्द धीरे-धीरे ठीक हो जाएगा। चिंता की कोई बात नहीं। वर्मा जी बोले — डॉक्टर साहब, अगर दर्द आपकी टांग में होता, तो मेरे लिए भी चिंता की कोई बात नहीं होती।

एक व्यक्ति की सेवा के माध्यम से नाम, रूपया कमाने की बहुत इच्छा हुई। उसने अपनी झोंपड़ी के सामने इतदल में से कार निकलवाने का कार्य किया। एक निश्चित दूरी थी जहाँ आने-जाने वाली कार फँस जाती थी वह दो-चार आदमियों को बुलाकर कार निकलवाता लोग इनाम के रूप में 10-20

रुपये देते तथा उसका नाम पूछकर उसकी सेवा भावना की तारीफ करते। वह व्यक्ति आधे रूपये खुद रखता बाकी के उन व्यक्तियों में बाँट देता। एक सेठ की कार तीन दिन तक आते-जाते वक्त उसी स्थान पर फँस जाती। वे लोग आकर कार निकाल देते। सेठ ने उस व्यक्ति से पूछा कार यहीं क्यों फँसती है। उस व्यक्ति ने सच-सच सारी बात कह दी कि मैंने यहाँ दलदल-कीचड़ बना रखा है। जैसे ही कोई गांडी फँसती है मैं अपने साथियों को बुलाकर गाड़ी निकलवा देता हूँ। लोग मेरी तारीफ भी करते हैं तथा इनाम भी देते हैं। इस प्रकार सेवा भी हो जाती है, मेरा यश फैल जाता है, धन की प्राप्ति होने से मेरे परिवार का खर्चा भी निकल जाता है।

वह व्यक्ति पैसे एवं नाम के लोभ में पहिले दलदल फैलाता है। गाड़ियाँ फँसवाकर निकलवाता है। फिर उनकी सेवार्थ नाम कमाता है। क्या यह उचित है? क्या यही सेवा है? भाग्यशालियों मेरा तो आपसे यही निवेदन है कि यदि आप किसी संकट में फँसे व्यक्ति या प्राणी मात्र को संकट में से नहीं निकाल सकते हैं, सेवा नहीं कर सकते हैं तो इस तरह फँसाने का कार्य भी मत करना। आज ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं।

शिक्षा में, चिकित्सा में, सेवा भावी संस्थाएँ आज सेवा के नाम पर स्वार्थ के खेल खेल रही हैं। सस्वार्थ रखकर की जाने वाली सेवा, सेवा नहीं इंसानियत का गला घोटना है। वासवदत्ता मथुरा की सर्वश्रेष्ठ नर्तकी थी। अत्यन्त सुन्दर, गौर वर्ण की हर कोई उसे देखता प्रभावित हो जाता। एक दिन उसने अपने महल के झरोखे से एक सुन्दर युवक को दीन-हीन हालत में देखा। वासवदत्ता उस युवक के सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो जाती है और शीघ्रता से सीढ़ियों से उतर कर नीचे आती है।

नीचे आकर उसने पुकारा — 'भंते!' मन्द-मन्द गति से चलते हुए संत समीप आया और उसने अपना पात्र आगे बढ़ाया। वासवदत्ता ने कहा — आप ऊपर पधारें। मेरा भवन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य और स्वयं मैं आपकी हूँ। सभी आपकी सेवा के लिए है आप इसे स्वीकार करें। संत ने कहा — आज उचित अवसर नहीं है। मैं तुम्हारे पास फिर आऊँगा। लेकिन तुम्हें अपने चारित्र की रक्षा करनी चाहिए। अन्यथा परिणाम बुरे भी हो सकते हैं। वासवदत्ता ने कहा

— मैं तुम्हारे मतलब को नहीं समझी, पर तुम्हें अवश्य आना है। संत ऊपर नहीं गया उसने कहा उचित अवसर आने पर अवश्य आऊँगा।

समय बीतता गया। कर्म की गति न्यारी होती है। कहा गया है कि सौन्दर्य हो, सम्पत्ति हो और युवावस्था हो उस समय यदि कोई सन्मार्ग दिखाने वाला नहीं हो तो व्यक्ति अनर्थ में चला जाता है। ऐसा ही हुआ वासवदत्ता के जीवन में।

समय बीतता गया। अपने दुराचरण के कारण वासवदत्ता भयंकर रोगों से घिर गई। कोई भी उसकी देखभाल करने वाला नहीं था। उसके ऐश्वर्य के दिनों में सभी उसके साथी थे, पर अब सभी नाक सिकोड़कर उसके आगे से जा रहे थे। वासवदत्ता राजमार्ग पर एक तरफ निराश्रित पड़ी थी। वस्त्र फटे हुए थे। शरीर पर जगह-जगह घाव हो गए थे। घावों के कारण शरीर से अत्यन्त दुर्गन्ध आ रही थी। असंख्य मक्खियाँ भिन्न-भिन्ना रही थी। वह एक घूँट पानी तक के लिए तरस रही थी। पर कोई उसकी सुध नहीं ले रहा था।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने किये का परिणाम भुगतना ही पड़ता है। अगर हम अपनी इन्द्रियों का उपभोग संयम के साथ नहीं करेंगे यही इन्द्रियाँ अंततः हमारे दुःख का कारण बन जाएंगी ऐसा ही घटित हुआ वासवदत्ता के जीवन में।

अचानक वह संत उधर से गुजरा। सड़क पर पड़ी वासवदत्ता कराह रही थी। उसकी शक्ति क्षीण हो गई थी। सौन्दर्य और लावण्य रोगों में परिवर्तित हो चुका था। अपने एक-एक पल को कष्ट से व्यतीत करती हुई वासवदत्ता पर उस संत की दृष्टि पड़ी। उसने पास जाकर भली-भाँति पहचानकर कहा — भद्रे, मैं आ गया हूँ। अत्यन्त कठिनाई से वासवदत्ता ने धीरे से कहा — बहुत देर कर दी। अब मेरे पास क्या रखा है। मेरा सब कुछ नष्ट हो गया है इतना कहकर वह बेहोश हो गई।

संत ने मन ही मन सोचा — सम्पत्ति, रूप, युवावस्था में इसके पास हर कोई रहता, सब इसके बाहर के संसार से जुड़े हुए थे, मुझे मालूम था एक दिन यही लोग इसका तिरस्कार कर बैठेंगे।

अब इसके पास कुछ भी नहीं होने से इसका कोई नहीं है। लगता है मेरे

आने का उपयुक्त समय तो अब हुआ है। मानव धर्म सेवा करने का तो मौका अब है। इस प्रकार सोचकर उसने उसे उठाया आश्रम में ले गया। स्वयं प्रतिदिन उसके घाव प्रेम-करुणा भावों से साफ करने लगा। धीरे-धीरे वह स्वस्थ हो गई। उस संत ने उससे कहा — मैं उचित अवसर की प्रतीक्षा कर रहा था, क्योंकि जब इंसान को चारों तरफ निराशा हाथ लगती है तब संत ही उसमें आशा का संचार करते हैं और संसार से मुक्त करते हैं। वासवदत्ता जाग्रत हो गई। उसने संत के चरणों में जीवन समर्पित कर दिया और मुक्त हो गई।

इसे कहते हैं सच्ची, निःस्वार्थ सेवा। उस संत ने आत्म कल्याण करते हुए सेवा-भाव से वासवदत्ता को वासना से मुक्त कर साधना में नियोजित कर दिया।

जीवन जीना भी एक कला है। सेवा भी उसका एक मौलिक चरण है। आत्मीयता, करुणा, परोपकार, संवेदना होने पर ही हम सेवा कर सकेंगे। दिखावे में, प्रदर्शन में, अहं में, नाम यश की भावना से की गई सहायता में सेवा नहीं है। हमें दूसरों की सेवा में संलग्न होना है स्वयं की सेवा कराने का भाव मन में कदापि नहीं रखना है। इसके लिए निष्काम भावना की, मनोबल की महती आवश्यकता है। वास्तव में हमारा धर्म ही सेवा है, जब तक समाज में सेवा भाव नहीं होगा, उच्च एवं आदर्श समाज की परिकल्पना नहीं हो सकती है।

मुझे ऐसे अनेक सद्गृहस्थ मिले जो चुपचाप, गुप्त रूप से सहायता करके प्रसन्न होते हैं। वास्तव में सेवा तो तन-मन-धन से निःस्वार्थ भाव से ही होनी चाहिए। यदि हम सेवा नहीं कर सकते हैं तो उसका अनुमोदन अवश्य करें अर्थात् अपनी अंतर्आत्मा से दुःखी व्यक्ति के स्वस्थ होने की परमात्मा से प्रार्थना अवश्य करें हमारी सच्ची दुआ भी दवा का काम कर जाया करती है।



जननी में छिपी जन्नत की राहें

माँ के चरणों से दिन की शुरुआत व माँ की सेवा से दिन का समापन करने वाला पुत्र धन्य है।

एक निःसंतान दंपति ने मुझे बताया कि एक महिला के पाँच बच्चे पहले थे। छठा होने वाला था और घर में खाने के लाले थे। डॉक्टर समेत सबकी यही सलाह थी कि बच्चा गिरा दिया जाए। माँ की भी यही इच्छा थी। हमें इसकी खबर लगी, तो हम वहाँ दौड़कर गए हमने उससे कहा कि लड़का हो या लड़की हम रखने को तैयार हैं। तुम बच्चे को जन्म दो महिला ने कुछ सोचा और हामी भर ली। हमने उस महिला की दवा-दारू पौष्टिक खुराक और आराम का पूरा खयाल रखा और अभावों से जूझते परिवार को कुछ आर्थिक मदद भी दी।

ठीक समय पर उस महिला ने एक स्वस्थ बच्ची को जन्म दिया, लेकिन ज्योंही हम उसे ले जाने आए, वह साफ मुकर गई, 'अपनी बच्ची को हरगिज नहीं दूँगी। आखिर मैं एक माँ हूँ। गरीबी के डर से अपनी कोख-जन्मी बच्ची को कैसे दे दूँ। जैसे बाकी पल रहे हैं, वैसे ये भी पल जाएगी।' महिला की यह भावना देखकर हम भाव विह्वल हो गए और वापिस लौट आए।

वास्तव में संसार में माँ के प्यार की कोई सीमा नहीं है। माँ का प्यार अनोखा प्यार है। सबके प्यार के समक्ष यदि हम मातृ प्रेम, माँ के प्यार को, ममत्व को, वात्सल्य-भाव को देखें तो वह सबसे यशस्वी धरातल पर स्थित है। हम स्वर्ग की कल्पना करते हैं, उसको प्राप्त करने की, उसमें पहुँचने की कल्पना करते हैं पर माँ के प्रेम को स्वर्गमय बनाने की, उसको अविरल रूप से प्राप्त करने की कोशिश नहीं करते। माँ के प्रेम और उसकी निर्मल ममता में ही जीवन का स्वर्ग है। क्या माँ के प्यार की तुलना किसी से की जा सकती है, जिसने इस सत्य को समझा है उनके लिए माँ ही ईश्वर है और धरती का पहला तीरथ है।

आज का युवा माँ-बाप की उपेक्षा भले ही कर रहा हो, पर याद रखें उपेक्षा करने वाले कभी भी जीवन में उत्थान के स्वर्णिम शिखर तक नहीं पहुँच सकते हैं क्योंकि माँ-बाप की दुआएँ ही उन्नति की दौलत प्राप्ति में नींव के पत्थर का काम किया करती है और इतिहास की अमिट छाप बन जाती है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि कई पुत्र मातृभक्त हुए जिन्होंने माँ के प्रेम के समक्ष सभी को तिलांजलि दी। कहा भी गया है कि 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।' ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने माँ की आज्ञा को शिरोधार्य करके अपने जीवन में महान् पद से भी इस्तीफा दे दिया।

आशुतोष मुखर्जी बंगाल के सपूत, निष्ठा संपन्न जीवन के धनी थे। उन्होंने माँ के हृदय को समझ लिया था। यह जान लिया था कि माँ से बढ़कर कोई नहीं है। माँ के सम्मान को समझकर उन्होंने अपने जीवन में माँ को ही ईश्वर तुल्य स्थान दिया। उस समय भारत आजाद नहीं हुआ था। भारत के तत्कालीन वायसराय ने हाइकोर्ट के न्यायाधीश, बंगाल यूनिवर्सिटी के उपकुलपति श्री आशुतोष मुखर्जी को काउंसिल का मेम्बर बनाया। हालांकि तब काउंसिल के मेम्बर केवल विदेशी होते थे पर आशुतोष की योग्यता के आधार पर उनका चयन किया गया। इतने बड़े पदों पर आसीन होने के बावजूद भी माँ की शिक्षा के अनुरूप वे हाथ से खाना बनाते, थर्ड क्लास में सफर करते, सभी की भावनाओं का सम्मान करते हुए माँ को सर्वोपरि स्थान देते।

उनकी विशिष्ट प्रज्ञा एवं योग्यता को देख वायसराय ने उन्हें विदेश भेजने का निश्चय किया। उन्होंने कहा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में जाकर आपको

वहाँ की शिक्षा-पद्धति का अध्ययन करना है। भारतीय शिक्षा-पद्धति में क्या परिवर्तन किया जाए इसकी रिपोर्ट तुम्हें देनी है। वायसराय के समक्ष आशुतोष तो क्या किसी भी भारतीय की बोलने की हिम्मत नहीं थी। कोई उनके समक्ष बोल नहीं सकता था, बैठ नहीं सकता था, पर वायसराय के समक्ष अत्यधिक गहन अर्थ से युक्त सीधे-सादे शब्दों में आशुतोष ने कहा सर मैं माँ से पूछकर जवाब दूँगा। वायसराय क्षणभर के लिए चमक गए, पर चुप रहे।

कल्पना कीजिये यदि आपके समक्ष इस प्रकार का तो क्या, थोड़ा भी ऊँचे पद का या किसी विशेष स्थान का ऑफर आए तो क्या आप अपने माँ-बाप से पूछकर जवाब देने का कहेंगे? कई युवा तो 'इसमें माँ से क्या पूछना है' यह कहते हुए हिचकिचाते भी नहीं हैं। बल्कि यह कहते हैं कि मेरी माँ तो पुराने ख्यालों की है वह आधुनिक जमाने को क्या समझे? उनके हमारे सोच में बहुत अन्तर है, पर वास्तव में जीवन की शालीनता, अनुभव की परिपक्वता, संस्कारों का संरक्षण जो उनमें होता था वर्तमान युग में वो हमारे में नहीं है। हमारी मानसिकताएँ भौतिक चकाचौंध के युग में बदलती जा रही है।

आशुतोष घर आए, मन में विदेश जाने का, नवीन अध्ययन करने का स्वप्न भी था। घर आने पर कृशकाय, जर्जर, सिकुड़े हुए शरीर वाली नब्बे वर्ष की माँ जो कि खाट पर लेटी हुई थी उनके चरण स्पर्श किया, और कहा — माँ, मुझे विदेश जाना है। वायसराय मुझे आग्रह पूर्वक भेज रहे हैं।

माँ ने पूछा — बेटा, किसलिए?

आशुतोष — माँ! भारतीय शिक्षा-पद्धति में क्या-क्या परिवर्तन करने हैं इसका अध्ययन करके, सर्वे करके बताना है यहाँ क्या-क्या परिवर्तन होना चाहिए। वायसराय द्वारा मेरे रहने, खाने आदि की सम्पूर्ण व्यवस्था कर दी गई है।

माँ — आशुतोष हमारी शिक्षा पद्धति में क्या कमी है? तक्षशिला, नालन्दा में तो विदेशी लोग आकर अध्ययन करते थे। फिर बेटा विदेश में धन तो मिलेगा पर धर्म सुरक्षित रहेगा इसकी क्या गारंटी है? तू मत जा। तुम्हारी माँ यह नहीं चाहती कि तू विदेश जाए।

धर्म संकट में फँसे आशुतोष सोचने लगे कि इधर माँ की आज्ञा है जिसे मुझे शिरोधार्य करना है, उधर वायसराय का आदेश कि जिसकी आज्ञा का मुझे

पालन करना पड़ेगा, पर आशुतोष की अर्तआत्मा ने माँ की आज्ञा को शिरोधार्य करने के लिए प्रेरित किया और उन्होंने उपकुलपति पद एवं काउंसलिंग मेम्बर के पद को छोड़ने हेतु त्याग पत्र लिखा। वे वायसराय के पास पहुँचे। वायसराय ने पूछा — क्या तुम्हारी माँ ने हाँ कर दी? आशुतोष ने जेब में हाथ डाला और कागज निकालते हुए नीची नज़रों से कहा — सर, माँ की तनिक भी आज्ञा नहीं, है कि मैं विदेश जाऊँ। सर! मैंने आपकी आज्ञा का अनादर किया है। आप दोनों पदों के त्यागपत्र स्वीकार करके मुझे पद-मुक्त करें। वायसराय ने पहली बार समझा कि भारत में माँ का क्या महत्व है। वे उठे, आशुतोष के निकट पहुँचे और कहा कि मैंने यहाँ आकर भारत की संस्कृति से संबंधित बहुत-सा साहित्य पढ़ा पर पहली बार माँ के प्रति अहो भाव को चरितार्थ होते देखा है। मैं अभिभूत हूँ। तुम्हें विदेश नहीं जाना है तुम मेरे पास रहोगे। यह कहकर वायसराय ने त्यागपत्र फाड़ दिया।

श्री आशुतोष की यह घटना क्या हमें अपने कर्तव्य का बोध कराएगी? हमने भौतिक जीवन में जबदस्त उन्नति की है। हमारी जीवन शैली में बहुत बड़ा परिवर्तन होता जा रहा है। जिस माँ ने हमें जन्म दिया है और पाला-पोषा बड़ा किया उसने अनेक कष्टों को सहन किया है। माँ तो सिर्फ माँ ही होती है। यह वात्सल्य की प्रतिमूर्ति है। उसके रोम-रोम में अपनी सन्तान के प्रति अपूर्व प्रेम का झरना सतत् प्रवाहित होता रहता है। माँ के प्रेम की तुलना हम दुनिया में किसी से नहीं कर सकते हैं। उसके जीवन की एक ही अभिलाषा रहती है कि मेरी सन्तान खूब सुखी रहे। माँ की सदा अभिलाषा रहती है कि मेरी सन्तान मेरी कोख को लज्जित नहीं करें अपितु उसके गौरव को बढ़ाए। उसकी ईश्वर की आराधना में भी यह सोच होती है कि हे भगवान! मेरी सन्तानों का कल्याण कर।

पर आधुनिक युग में सुखी जीवन की अभिलाषा वाली माँ अपने ही समक्ष स्वप्नों के सम्पूर्ण महल को ढहता हुआ देख रही है। आज पाश्चात्य सभ्यता से प्रभावित होने के कारण युवा दूरगामी परिणामों को देखने का प्रयत्न नहीं करते हैं। एकाकी जीवन व्यतीत करना पसन्द करते हैं। सिर्फ अपनी पत्नी और सन्तान के अतिरिक्त चाहे माँ-बाप हों या अन्य परिवार के लोग सभी को वे बन्धन मानते हैं। व्यक्ति संवेदनहीन बनता जा रहा है। हमारे संस्कार, परिवारों के अटूट रिश्ते समाप्त प्रायः हो रहे हैं या छोटे से दायरे में सिमट रहे

हैं। जबकि माँ अपने शिशु में पूरी जान भर देती है। वह उसे महसूस भी करता है। नासमझ शिशु सबकी गोद में जाकर रोता है किन्तु वही अपनी माँ की गोद के सुखद आश्रय को प्राप्त करके, कर कमलों के स्पर्श से सुरक्षित-सा महसूस कर चुप हो जाता है। जो सुखानुभूति माँ को अपने बच्चे को गोद में लेकर, जन्म देते हुए, पालन-पोषण करते हुए होती है उसका वर्णन नहीं किया जा सकता है। हम माँ की महत्ता को समझने का प्रयत्न करें। हमारे भौतिक प्रेम में आंशिक ही सही पर वासना होती है, स्वार्थ होता है, आकांक्षा होती है किन्तु माँ के प्रेम में न स्वार्थ है, न वासना, न ही मांग है, न ही आकांक्षा बस उसमें तो निःस्वार्थ प्रेम है, मूक वात्सल्य भाव है, अमृत तत्व है। इस अकथनीय ममत्व, प्यार, वात्सल्य त्याग को शब्दों के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

कौरव और पाण्डवों के युद्ध में द्रोणाचार्य कौरवों के पक्ष में थे। उनकी यह दृढ़ प्रतिज्ञा थी कि अश्वत्थामा की मृत्यु के समाचार सुनकर मैं तुरन्त शस्त्रों का त्याग कर दूँगा। द्रोणाचार्य के मनोबल तो तोड़ने के लिए एक बार युधिष्ठिर ने कहा — 'अश्वत्थामा हतः नरो वा कुंजरो वा।' युधिष्ठिर ने 'अश्वत्थामा हतः' शब्द जोर से कहा और 'नरो वा कुंजरो वा' शब्द धीरे से कहा। अश्वत्थामा की मृत्यु के समाचार सुनकर द्रोणाचार्य ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार शस्त्र छोड़ दिए। अश्वत्थामा को जब यह ज्ञात हुआ तो वह क्रोध से आग बबूला हुआ और उसी रात्रि में पाण्डवों की हत्या करने का दृढ़ संकल्प किया।

युद्ध विराम की घोषणा के पश्चात् अश्वत्थामा ने युद्धनीति का उल्लंघन किया तथा पाण्डवों के शिविर में पहुँचा। वहाँ पाण्डवों के पाँच पुत्र थे। उसने पाण्डवों के भ्रम में उन पाँचों पुत्रों का वध कर दिया। अपने पाँचों पुत्रों की अकाल मृत्यु से द्रौपदी रोने लगी। भीम ने द्रौपदी को वचन दिया कि वह अपने पुत्र के हत्यारे को कल ही पकड़ कर ला देगा।

दूसरे दिन भीम अश्वत्थामा को घसीटकर द्रौपदी के समक्ष लाता है और उसे मौत के घाट उतारने की बात कहता है। उस समय पुत्रों की विरह वेदना से व्यथित द्रौपदी कहती है कि इसने मुझे पुत्र विहीन कर दिया है। पुत्र का विरह क्या होता है इसे मैं भली-भाँति समझ चुकी हूँ। मैंने साक्षात् अनुभव किया है और मैं इसे भी मारकर अपनी तरह, अपनी गुरु-पत्नी को पुत्र-हीन नहीं बनाना

चाहती हूँ। कृपया इसे अभयदान दे दो।

यह था उदार हृदया माँ का वात्सल्य, प्यार और प्रेम। हम जैसे-जैसे स्वयं को आधुनिक कहने लगे हैं, समय को पहचाने बिना उसमें गोते लगा रहे हैं जैसे-जैसे माता-पिता के सम्मान को, ऋण को भूल रहे हैं। जो माँ प्रातःकाल सबसे पहले उठकर घर के कार्यों में लगती, देर रात तक कार्य करती, गीले में स्वयं सोती पर अपनी सन्तान को सूखे में सुलाती, स्वयं भूखी रहती है पर अपनी सन्तान का भरण-पोषण करती है। उस माँ को पता है समय के फेर में सब कुछ बदल गया है। उसे कोई पूछने वाला नहीं है। पुत्र की शादी होने पर उसे स्वयं को स्वयं का प्रबंध करना पड़ेगा। बीमार होने पर कोई बेटा यह नहीं सोचेगा कि वह रात में ठिठुर तो नहीं रही, दवा उसके पास है या नहीं। एक माँ के चार बेटे माँ के चार टुकड़े तो नहीं कर सकते। एक-एक माह अपने पास धर्मशाला के राहगीर की तरह रखते हैं। या पैसे का प्रबन्ध करके उसे स्वयं के हाल पर छोड़ देते हैं। विडम्बना है कि चार लड़के मिलकर भी एक माता-पिता को पाल नहीं सकते, पर अकेली माँ चार को पाल लेती है। वह यह नहीं सोचती कि चार को कैसे पाले? आलीशान मकान में पुत्र अपने माँ-बाप को नहीं रख सकते, रखते हैं तो पूर्णतया सेवा देखभाल नहीं करते। वह यह भूल जाते हैं कि हमारी सन्तान भी हमारे इस दुव्यवहार से शिक्षा ले रही है।

ऐसी कई घटनाएँ हमारे सामने हैं जिसमें हम देखते हैं कि पुत्र अपने दादा-दादी का तिरस्कार देखकर अपने माँ-बाप का हृदय बदल देते हैं।

एक बुढ़िया माँजी के एक बेटा था। माँजी ने अत्यधिक कष्ट उठाकर बेटे को बड़ा किया पढ़ाया-लिखाया तथा होशियार किया। बेटे ने अपना धंधा करना शुरू किया। बुढ़िया बहुत आशावान् थी। उसके मन में सदैव यही आशा रहती है कि मेरा बेटा अब कमा रहा है। मेरे सुख के दिन आ गए हैं। बहू भी आएगी घर में खुशहाली छा जाएगी।

बेटे का विवाह किया गया। बहू आई शुरू में तो बहू शांत प्रकृति की थी पर शनैः शनैः उसकी प्रकृति में अन्तर आने लगा। बुढ़िया के पौत्र हुआ। बुढ़िया काफी प्रसन्न रहती थी। धीरे-धीरे पौत्र बड़ा होने लगा। इधर बहू ने माँजी की उपेक्षा करनी प्रारंभ कर दी। जब पति घर में होता तब तो बहू ढंग से

बोलती अन्यथा घर का सारा काम उससे करवाती। मिट्टी के बर्तनों में खाने को देती। परिवार के सभी सदस्य स्टील के बर्तनों में खाते। माँजी को अत्यधिक दुःख होता था लेकिन वह मन ही मन गम को पी रही थी। किसी से कुछ नहीं कहा।

माँजी प्रतिदिन भोजन करके मिट्टी के पात्र को धोकर पौँछकर घर के एक कोने में रख देती। जिससे किसी को पता नहीं चले। एक दिन बुढ़िया के पोते ने अचानक माँजी को मिट्टी के बर्तनों में भोजन करते देखा तो पूछा आप इन बर्तनों में भोजन क्यों करती हो? माँजी ने सोचा कि यदि मैं इसे सत्य बता दूँगी तो मेरे साथ और भी दुर्व्यवहार हो सकता है। यह सोचकर वह मौन रही। परन्तु पोते के अत्यधिक आग्रह करने पर उसने सोचा कि झूठ बोलने से भला क्या लाभ? कष्ट तो वैसे भी सह रही हूँ। मैं इसे सच-सच सारी बात कह दूँ।

दादी ने कहा — बेटा, तेरी माँ मुझे इन्हीं बर्तनों में खाना देती है। पोते ने कहा — दादी! घर में इतने स्टील के बर्तन हैं आप उसमें ले लिया करो। दादी ने अपनी सारी व्यथा सुनायी और कहा तुम स्कूल चले जाते हो और तुम्हारे पापा आफिस पीछे से तुम्हारी माँ मुझसे खूब काम करवाती है, खाना भी रूखा, सूखा बचा हुआ देती है, रसोई में खाने नहीं देती इस तरह अपनी व्यथा को कहा। माँ उस समय घर से बाहर थी। इसलिए दादी-पोते को बात करने का अच्छा मौका मिल गया। उसने बताया कि कितने कष्ट उठाकर अपने लड़के को पढ़ाया, लिखाया, होशियार किया आज उसका यह नतीजा है, पर मुझे यह भी खुशी है कि मेटा बेटा-पोता तो आराम में है। यह कहते-कहते दादी की आँखों में आँसू आ गए।

दादी की बातें सुनकर पोते को बहुत कष्ट हुआ। उसने सोचा मुझे कुछ भी करना करना पड़े पर दादी माँ आराम से रहे यह तो करना ही होगा। उसने दादी को अपनी योजना बताई माँ आ गई थी। इसलिए वह वहाँ से हट गया। दादी भी काम में लग गई।

दूसरे दिन माँजी ने मिट्टी के बर्तन में भोजन किया और धोने के बहाने उन बर्तनों को तोड़ दिया। बर्तनों के टूटते ही बहू का गुस्सा आसमान पर चढ़ गया। वह नाराज होकर बोली अब तुम किसमें भोजन करोगी। देखकर काम नहीं

होता, एक चार बर्तन भी ढंग से नहीं धो सकती। अब किसमें खाएगी।

पोते ने कहा — माँ बर्तन पुराने हो गए होंगे। रोज़ काम में लेने से घिस गए होंगे। बर्तन धोते समय अचानक टूट गए तो इसमें दादी का क्या दोष है? आप तो दादी का इतना ध्यान रखती हो। अगर दादी को मिट्टी के बर्तनों में ही खाने का शोक है तो मैं बाजार से बर्तन ला देता हूँ।

पोता बाजार गया और मिट्टी के बर्तनों की तीन जोड़ी ले आया। आकर वे बर्तन उसने दादी को देते हुए कहा कि दादी माँ एक जोड़ी में तुम भोजन करना और दो जोड़ी सुरक्षित रख लेना।

दादी माँ ने कहा बेटा मुझे और जोड़ी की आवश्यकता नहीं है। मैं तो कई सालों से इसी में खा रही थी। यह तो ज़रा हाथ से यूँ ही छूट गई। माँ ने कहा — बेटा इतने बर्तन लाने की क्या ज़रूरत थी। इस बुढ़िया के लिए तो एक जोड़ी ही काफी थे। तभी पोते ने कहा — माँ एक जोड़ी दादी की है दो जोड़ी आपके लिए। बुढ़ापे में आपको भी तो ज़रूरत पड़ेगी। हो सकता है आपके बेटा-बहू टूटने पर मिट्टी की थाली खरीदकर न लाए। सो मैंने दो थाली अभी से लाकर रख दी ताकि एक के फूटने पर दूसरी थाली काम आ जाएगी।

दादी ने कहा — बेटा यह तू क्या कह रहा है? पर बहू ने जैसे ही यह शब्द सुने वह एकदम घबरा गई। अरे! मेरे कड़वे कर्मों का फल मुझे भोगना पड़े। इस प्रकार दादी से उनकी बदतर हालात का ख़्याल करके उसने अपनी सास से माफी मांगी तथा सेवा सुश्रुषा में लग गई।

यह कैसी विडम्बना है कि विवाह के पूर्व अपनी माँ के प्रति जो श्रद्धा-समर्पण की भावना रहती है, यह भावना विवाह के बाद आजकल काफी बदल जाती है। जिस माँ की गोद में बैठकर बालक बड़ा होता है उसी माँ के पास पन्द्रह मिनट भी बैठने की फुर्सत नहीं है। माँ के वचन कर्कश लगते हैं पत्नी ही सब कुछ हो जाती है। ऐसे घरों की सुख-सम्पत्ति भी समाप्त होने लगती है।

हमें माता-पिता द्वारा प्रदत्त संस्कारों की रक्षा करने का प्रयास करना चाहिए। इतिहास इस वर्णन से भी भरा हुआ है कि अनेकों कष्टों को सहकर माताओं ने अपने स्वार्थ को तिलांजलि दी तो सन्तान ने उन संस्कारों की रक्षा भी की। माँ के आदेश को प्राप्त करके आर्यरक्षित दृष्टिवाद का अध्ययन करते हैं

तथा स्व कल्याण के साथ ही अपना तथा अपने परिवार का कल्याण करते हैं ।

पशु-पक्षियों में भी अपनी सन्तान के प्रति अनुठा प्रेम होता है तो मानव के रूप में जो माता है, उसके दिल में अपनी सन्तान के प्रति कितना प्रेम होगा यह शब्दातीत है । वह अपने प्राणों का बलिदान देकर भी अपनी सन्तान की रक्षा करना चाहती है ।

महारानी विक्टोरिया की पुत्री का 10 वर्ष का पुत्र असाध्य रोग से घिर गया । उसके शरीर में भयंकर रोग फैल चुका था । वह मृत्यु शय्या पर लेटा था । छूत की बीमारी हो जाने के कारण डॉक्टरों ने यह खास हिदायत दी थी कि कोई भी उसके पास नहीं जाए ।

एक बार सोते हुए रोगी बालक की अचानक निद्रा भंग होने पर वह दर्द के कारण कराहने लगा । माँ-माँ की पुकार करने लगा । अपने पुत्र की इस भयंकर वेदना को सुनकर माँ रह नहीं सकी वह भी चीखती हुई तुरन्त दौड़ती हुई अपने पुत्र के पास पहुँची तथा उसे अपनी गोद में ले लिया ।

उसी समय एक नर्स वहाँ पहुँची । उसने कहा — बहिन जी ! आप तो सुशिक्षित हैं, समझदार हैं, आपको इस बालक के पास आने के लिए पूर्णतया मना किया गया था, फिर भी आपने इस बालक को अपनी गोद.....

भावावेश में आकर बीच में ही वह बोल उठी क्योंकि मैं इसकी माँ हूँ । मुझे कोई नहीं रोक सकता । माँ तो सिर्फ माँ ही होती है ।

माँ तो वात्सल्य की साक्षात् मूर्ति होती है । उसके रोम-रोम में सन्तान के प्रति अपूर्व प्रेम का झरना सतत् बहता रहता है । माँ की तुलना जगत् में किसी से भी नहीं कर सकते हैं ।

वर्तमान में माता-पिता की भक्ति, सेवा-सुश्रुषा की उपेक्षा करना भविष्य में स्वयं की उपेक्षा करवाने का निमंत्रण है । उनकी अपेक्षाओं पर खरा उतरने की बजाय उनकी उपेक्षा करना वास्तव में भावी पीढ़ी के उज्ज्वल भविष्य के लिए खतरे की घंटी है । आदर्श पुत्र बनने के लिए हम श्रवण कुमार बनें । हमारा अस्तित्व माता-पिता के कारण की है । इसलिए हम उनके प्रति सदैव 'मातृ देवो भव', 'पितृ देवो भव' का भाव रखें





- ❖ स्वयं को शांति का सरोवर बनाइए। क्रोध का पेट्रोल-पम्प नहीं। सरोवर में अगर कोई अंगारा गिरेगा भी तो बुझ जाएगा, वहीं पेट्रोल पर गिरा तो घर-परिवार-समाज को जला डालेगा।
- ❖ वैर, विरोध और वैमनस्यता की स्याही से सना हुआ वस्त्र प्रेम, आत्मीयता, क्षमा और मैत्री के साबुन से ही साफ होता है। याद रखें बड़े आदमी के क्रोध की बजाय छोटे आदमी की क्षमा कहीं ज्यादा महान होती है।
- ❖ विचार हमारे स्वभाव का निर्माण करते हैं, स्वभाव व्यवहार का निर्माण करता है और व्यवहार व्यक्तित्व का। व्यक्तित्व को बेहतर बनाने के लिए विचारों को बेहतर बनाएं।
- ❖ सड़क पर किसी घायल व्यक्ति को देखकर उसे नज़र अंदाज न करें। संभव है कि हम उसे किसी प्रकार का सहयोग न कर पाएं फिर भी घायल को धर्ममंत्र का श्रवण अवश्य करवा दें। संभव है ऐसा करके हम किसी धरणेन्द्र-पद्मावती के देवस्वरूप को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त कर लें।
- ❖ जो व्यक्ति अपने जीवन में इस बात का बोध बनाए रखता है कि मैं क्रिया-प्रतिक्रिया के भंवरजाल में नहीं उलझूंगा, वह अपने जीवन में शांति और आनंद को बरकरार रख सकता है।
- ❖ संगठन में ही शक्ति है। पांच लकड़ियां एक साथ बंधी हों, तो पांच भाई एक-साथ मिलकर भी नहीं तोड़ सकते, पर याद रखें बिखरी लकड़ियों को कोई भी तोड़ सकता है।



प्रवर्तिनी चन्द्रप्रभा श्री

